

प्रकाशक का निवेदन

श्रीजवाहरकिरणायत्री का भीमा भाग पाठकों के
हैं। हमें अपार आनंद हो रहा है। आशा है
ही प्रेम और साथ में अपनाएंगे, जिसने प्रेम से
विश्व है।

प्रकाशक का निवेदन—कार्य एक वर्ष में भी बढ़ा
गया था, अगर राजनीतिक आगोश का समय
प्रभाव पड़ा है, उसके कारण इसके मैगज़ीन में
बढ़ हो गया है। इस बीच काफ़ी पाठकों को जो
है, उसके लिए हम क्षमायात्री हैं। यह संभव होगा
इस समय पहले प्रकाशित न कर सकें।

श्रीजवाहरकिरणायत्री की स्थापना कि-
सके अंतर्गत आती है शुद्धता के की गई है
श्री निमात्रायें प्रकाशक श्रीजवाहरकिरणायत्री महाराज
की क्षमायात्री हैं। यह प्रकाशक

नं०

विषय

१.	जीजिन मोहनगारो दि
२.	होवर की बोज
	परमात्मप्राप्ति के सरल साधन
३.	प्रभु प्रार्थना का प्रयोजन (क)
४.	" " (ख)
५.	प्रार्थना
६.	परमात्मा क्या सब है
७.	नगरकार मंत्र
८.	चन्द्रतर की प्रार्थना
९.	पिर का परिहार
१०.	तपः महाशक्ति
११.	संसारगरी बर्ष
१२.	कहो मे कहो ?
१३.	अष्टरूपता
१४.	अष्टरूपता (२)
	राम राव

श्री जिन मोहनगारो छे !

समुदविजय नुत श्रीनेमीश्वर० ।

यह भगवान् अग्निष्टनेमि की प्रार्थना की गई है । सारा संसार एक मन होकर परमात्मा की जो प्रार्थना करता है, वही प्रार्थना जैन अपने शब्दों में की है । प्रार्थना का विषय इतना व्यापक और मार्बजनिक है कि प्रार्थ्य महापुरुष का नाम चाहे कुछ भी हो और प्रार्थना के शब्द भी कुछ भी हों, उसकी मूल वस्तु समान रूप से सभी की होती है । इस प्रार्थना में कहा गया है:—

‘श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राप्त्य हमारो छे ।’

यहां पर यह आशंका की जा सकती है कि क्या भगवान् मोहनगारो हो सकता है ? जिसे जैन-धर्म बीतराग कहता है, जो राग, द्वेष और पक्षपात से रहित है, उसे ‘मोहनगारो’ कैसे कहा जा सकता है ? जो परमात्मा स्वयं मोह से अनीत है, वह ‘मोहनगारो’ कैसा ? जिसे अमूर्तिक और निराकार माना जाता है, वह किम प्रकार और किसे मोहित करता है ? इस आशंका पर सगल रीति से यहां प्रकाश डाला जाता है ।

लोक-मानस इतना संकीर्ण और अनुदार है कि इनने संसार के अत्यन्त भौतिक पदार्थों की तरह ईश्वर का भी घटवारा-मा कर सकता है । यही कारण है कि ईश्वर के नाम पर भी आपने दिन

‘मोहनगारो’ मानने वाला भक्त कैसा होना चाहिए, यह जानने के लिए सांसारिक बातों पर दृष्टिपात करना होगा ।

जो पुरुष संसार के सब पदार्थों में से केवल धन को ‘मोहनगारो’ मानता है, उसके सामने दूसरी तरफ़ की चाहे लाखों घावें ही जाएँ, लेकिन वह धन के सिवाय और किसी भी बात पर नहीं पीकेगा । उसे धन ही भन दिखाई देगा । वह सोने में ही सब करा-पाठ मानेगा । कहेगा—

‘मर्धे गुणाः काञ्चनमाधयन्ति ।’

संसार के समस्त सुखों का एक मात्र साधन और विश्व में एकमात्र मागभूत वस्तु धन है, धन ही परब्रह्म है, धन ही धर्म है, धन ही लोक-परलोक है, ऐसा समझने वाला पुरुष धन को ही ‘मोहनगारो’ मानेगा । ऐसा आदमी ईश्वर को मोहनगारो नहीं मान सकता । वह ईश्वर की तरफ़ झँक कर भी नहीं देखेगा । कदाचित् किसी की प्रेरणा से ईश्वर की प्रार्थना करेगा भी तो कंचन के लिए करेगा । वह धन-लाभ को ही ईश्वर की सचाई की कसौटी बना लेगा ।

कंचन और कामिनी संसार की दो महाशक्तियाँ हैं । कई लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए कंचन तो इतना ‘मोहनगारा’ नहीं है, किन्तु कामिनी ही उन्हें गुण-निधान, भुव्य-निधान और आनन्द-निधान जान पड़ती है । कंचन और कामिनी में ही संसार की समस्त शक्तियों का समावेश हो जाता है ।

इन शक्तियों से जिनका अन्तःकरण अभिभूत हो गया है, जिसके इन्द्रिय पर इन्हींने अधिपत्य जमा लिया है, वह ईश्वर की

तरफ नहीं मँकेगा। अगर मँकेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर वसे कामिनी दे। कदाचिन् कामिनी मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र-पुत्री परिवार की याचना करेगा। पुत्र-पुत्री मिल जाने पर वह सांसारिक मान-सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। अगर जो मनुष्य कंचन और कामिनी आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा, वह जन्मों से किसी को कभी होते ही ईश्वर से विमुख हो जाएगा और कहेगा—ईश्वर है कौन ! अपना उद्योग करना चाहिए, वही काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नहीं हो सकते। इनके आगे ईश्वर की बात करना भी निरर्थक-सा हो जाता है।

प्रश्न हो सकता है—परमात्मा के भक्त, परमात्मा को 'मोहन-गारो' मानकर उसके ध्यान में आनन्द मानते हैं, लेकिन कैसे कहा जा सकता है कि यह उनका भ्रम नहीं है ? क्या यह सम्भव नहीं है कि वे भ्रम के कारण ही परमात्मा का भजन करते हैं ? परमात्मा ने ऐसा क्या आकर्षण है—कौन-सी मोहक-शक्ति है कि भक्त-जन परमात्मा के ध्यान दिना, जल के बिना मछली की तरह विकल रहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मछली को जल में क्या आनन्द आता है, यह जान तो मछली ही जानती है, उसी से पूछो । दूसरा कोई क्या जान सकता है ! इसी प्रकार जिन्हें परमात्मा से तत्कट प्रेम है, वही बतला सकते हैं कि परमात्मा में क्या आकर्षण है, कैसा सौन्दर्य है और कैसी मोहक-शक्ति है ! क्यों उन्हें परमात्मा के ध्यान दिना चैन नहीं पड़ता ! उनके अन्दर से निरन्तर यह ध्वनि फूटती रहती है—

‘भी जिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राप्त हमारो छे ।’

इस प्रकार परमात्मा, भक्त का आधारभूत है । परमात्मा को सभी ध्यान में लिया जा सकता है, जब उसे कंचन-कामिनी से अलित रक्ता जाय । जिसमें कामना-वासना नहीं है, वही मोहनगारो होता है । कामना-वासना में लिय है, वह भीतरंग नहीं है और जो भीतरंग नहीं है वह मोहनगारो भी नहीं हो सकता ।

आत्माओं की स्वभाव में ही प्रिय है । एक साथ ही में भक्ति उत्पन्न हो जाती है । आप (श्रीवांगम्य) ही जाये हैं । यही मेरे पास आने का मतलब है । त्याग के प्रति भक्ति । अब साथ में

तक नहीं माँकेगा। अगर माँकेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर उसे कामिनी दे। कदाचिन् कामना मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र-पारि-परिवार की याचना करेगा। पुत्र-पौत्र मिल जाने पर वह सासारिक मान-सन्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। अगर जो मनुष्य कचन और कामना आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा, वह जन्म में कामों का काम होने ही ईश्वर में विमुख हो जायेगा और कहेगा—ईश्वर है जैन। अपना उद्योग करना चाहिए, बड़ी काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नहीं हो सकते। इनके आगे ईश्वर की याचना ना निरर्थक-भा हो जाता है।

जैसे धन को मोहनगार मानने वाला उन के मिषाय और हिमो न भलाई नहीं देखता, उन्हीं प्रकार ईश्वर को मोहनगार मानने वाला मनुष्य ईश्वर के मिषाय और किन्हीं में भलाई नहीं देखते। वे लोग ईश्वर को ही मोहनगार मानते हैं और ईश्वर को ही अपना उपासक समझते हैं।

जल में रहने वाली मछली स्वामी में है। पीती भी है, विषय-भोग भी करती है, मगर करती है मद्य कुछ जल में रह कर ही। जल में अलग करके उसे मस्वमन के बिलौन पर रख दिया जाय और बड़िया भोजन खिलाया जाय, तो वह न भोजन स्वापगी, न मस्वमन के मुलायम स्पर्श का आनन्द ही अनुभव करेगा। उसका ध्यान तो जल में ही लगा रहेगा। परमात्मा के प्रति भक्तों का भावना भी ऐसी ही होता है। भक्त चाहे गृहस्थ हो या साधु, पानी के बिना मछली की तरह परमात्मा के ध्यान के बिना सत्य अनुभव नहीं करता। उसका स्वामी-पाना आदि मारा ही व्यवहार परमात्मा के ध्यान के साथ ही होगा। परमात्मा के जाने के बिना कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लगती।

उत्पत्ति होती है, तो जो भगवान् पूर्ण बीतराग हैं, उनके ध्यान में कितना आनन्द न आता होगा ? कदाचित् यहाँ आकर व्याख्यान सुनने वालों पर एक-एक पैसा टैकम लगा दिया जाय, तो क्या आप लोग आएंगे ? टैकम लगा देने पर आप कहेंगे—इन साधुओं को भी हम गृहस्थों के समान ही पैसों की चाह लगी है और जहाँ पैसों की चाह है वहाँ परमात्मा कैसे हो सकता है ? क्योंकि परमात्मा तो बीतराग है ।

व्याख्यान सुनने के लिए आने वालों पर पैसे का टैकम न लगाकर छटौं-छटौं भर मिठाई लेकर आने का नियम लागू कर दिया जाय तो खुरामर के लिहाज से मिठाई लेकर आने की धान दूमरी है, लेकिन बीतरागता की भावना में आप न आयेगे और कहेंगे—इन साधुओं को भी रस-भोग की आवश्यकता है ! मारांश यह कि आप यहाँ त्याग देखकर ही आये हैं । इस प्रकार लगभग सभी आत्माओं को त्याग प्रिय है । फिर यह त्याग भावना क्यों दबी हुई है ? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि आत्मा कंबल और कामिनी के मोह में फँसा हुआ है । आत्मा रात-दिन मांमारिक वासनाओं में लगा रहता है, इसी कारण उसकी त्याग-भावना दबी हुई है । संसार वासना के बराबरी होने के कारण कई लोग धर्म-सेवन भी वासनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से ही करते हैं । कनक और कामिनी के भोग में सुविधा और वृद्धि होने के लिए ही वह धर्म का आचरण करते हैं । ऐसे लोगों का अन्तःकरण वासना की कालिमा में डूबना मलिन हो गया है कि परमात्मा का मन-मोहन रूप उस पर प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता ।

यद्यपि मुझ में वह उत्कृष्ट योग शक्ति नहीं है कि मैं आपका ध्यान संसार की ओर से हटाकर ईश्वर में लगा दूँ, लेकिन बड़े-बड़े

मिष्ट मदात्मात्मी ने शास्त्रों में जो बुद्ध कहा है, मुझे उसमें
 बुद्ध शक्ति दिव्य है और इसी कारण वही पात्र मैं आप
 सुनता हूँ। आप मन मदात्मात्मी के अनुभवपूर्ण कथनही
 ध्यान लगाएँ। फिर संभव है कि आपका ध्यान संसार की ओर
 से हटकर परमात्मा की ओर लग जाए।

अनुपम, सृष्टि का वादस्ता है। पाप्मी भाषा की एक वहाव
 ने बहलावा गया है कि अनुपम सब चीजों का वादस्ता है। इस
 वहाव के अनुसार अनुपम सब प्राणियों का राजा है और सब
 प्राणी उसमें होते हैं। उह अनुपम का इतना अधिक महत्व है,
 अनुपम का यह इतना डंडा है तो आपको विद्वान्ना चाहिए कि
 माया वर्णन क्या होना चाहिए। जो सब में क्या जिना उता
 , वह किसी न किसी वर्णन से ही। अनुपमों में ही देखते।
 दुष्टों के कोई उह होता है, वह का उहाँ डंडा जिना उता है।
 अनुपम उह नहीं होते। क्या सृष्टि सब है ही सृष्टि का ज्ञान
 पा. में से कोई उह सब उता है। नहीं। जिसके दिनग में
 पा. में से कोई उह सब है, जो दुष्ट को दुष्ट और पा. को पा.
 मिष्ट कर दिखता है, इस शक्ति के कारण जो अज्ञानों को
 बहलावा है, उह सबता है या अज्ञानों को दुष्ट कर महता है, वह
 पा. का उह सबता है या बहलावा से सुहा महता है, वह
 उह बहलावा है। इस प्रकार उह सब करने के लिए ही उह
 होता है।

अतएव यह है कि उह, उह सब का बहलावा करता है, उह सब
 को बहलावा करता है, उह सब का बहलावा करता है। इस
 प्रकार का उह सब बहलावा करने का उह सब का उह सब
 के ही उह सब है। उह सब उह सब का उह सब का उह सब

जगद् हरियाली फैल जाती है, असंख्य कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं, इस कारण विहार करने में कठिनाई होती है और विहार करने से अहिंसा धर्म का उद्योग आदर्श नहीं पल सकता। अतएव वर्षा में उत्पन्न होने वाले जीवों की रक्षा के उद्देश्य से मैं आशा देता हूँ कि चार महीने एक स्थान पर निवास करना और प्रतिसंलीनता धारण करना। प्रतिसंलीनता धारण करने का अर्थ है—मन, बचन, काय को सदा की अपेक्षा अधिक रोक कर तप-संयम अधिक करना।

इस प्रकार चार मास तक एक स्थान पर रहना भगवान् की आज्ञा के अनुसार साधु का कर्त्तव्य है। अगर कोई साधु यह सोचता है कि यहां चार मास रहना ही है और यहां की मिठाई खड़ी खादिष्ट होती है तथा भक्त लोग खूब 'घण्टी खमा' करते हैं, तो मिठाई खाकर 'घण्टीखमा' की मौज क्यों न लूट लें ? और ऐसा सोच कर वह अगर चातुर्मास को खाने-पीने और मान-बढ़ाई का साधन बना लेता है तो क्या वह भगवान् की आज्ञा का और अपने कर्त्तव्य का पालन करता है ? कदापि नहीं।

जो साधु चातुर्मास को जीवों की रक्षा एवं अधिक तप-संयम करने का अवसर न मान कर, जिह्वा-तृप्ति या मान-बढ़ाई का अवसर समझता है, भगवान् उसे पाप-भ्रमण कहते हैं। चातुर्मास के सिवाय शेष काल में जो तप-संयम किया जा सकता था, उसे चातुर्मास में एक स्थान पर रहकर करना चाहिए। चातुर्मास में अधिक से अधिक धर्म-जागृति करनी चाहिए और जिन प्राणियों की दया के खातिर एक स्थान में रहने की भगवान् ने आज्ञा दी है, उन प्राणियों की दया संसार में फैलानी चाहिए।

रसोई का ईंधन अच्छी तरह देखे-भाले बिना काम में नहीं लाना चाहिये ।

गृहस्थ होने के कारण यद्यपि आप सम्पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकते, तथापि आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि यतना के साथ कार्य करने से गृहस्थ भी बहुत-से पापों से बच सकता है । यहाँ गृहस्थ के कर्त्तव्यों पर कुछ प्रकारा डाला जाता है । इसके अनुसार चलने से आप परमात्मा के भक्त कहलाएंगे और उस 'मोहन-गारो' के समीप पहुँचेंगे ।

अभी कुछ दिनों पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थीं । घनाट्ट और निर्घन का इस विषय मशीन का आटा में कोई भेद नहीं था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती ही है । नौरोग रहने के लिए यह अत्यावश्यक है । अपने हाथ से आटा पीसने में बहिनों का अच्छा व्यायाम होजाता था और वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं । परन्तु आजकल हाथ की बक्की परों से उठ गई और उसका स्थान पनबक्की ने ग्रहण कर लिया है । बहिनें आलसी हो गई हैं । वे अपने हाथ से काम करने में कुछ मानती हैं और धीरे-धीरे बहूपन का भाव भी उन्हें ऐसा करने के लिए रोकने लगा है । इसका एक परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि बहिनों ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है । आज अधिकांश दाइयाँ निर्दल निःशुल्क और तरह-तरह के रोगों से ग्रस्त हैं । प्रसव के समय अनेक बहिनों को भारी कष्ट उठाना पड़ता है और कइयों को तो प्राणों में भी हाथ भी बैठना पड़ता है । इसका एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी वशीलत वे

गड़ हरिपातो कैल जावो है, असंख्य कोड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं, न कारख विहार करने में कठिनाई होती है और विहार करने से दिना धर्म का वह आदर नहीं पल सकता। अतएव बर्षा में लग्न होने वाले जीवों की रक्षा के उद्देश्य से मैं आशा देता हूँ कि वे नदीने एक स्थान पर निवास करना और प्रतिसंलीनता धारण करना। प्रतिसंलीनता धारण करने का अर्थ है—मन, बचन, काय की सदा की अपेक्षा अधिक रोक कर तप-संयम अधिक करना।

इस प्रकार चार मान तब एक स्थान पर रहना भगवान की आज्ञा के अनुसार साधु का कर्त्तव्य है। अगर कोई साधु यह सोचता है कि यहाँ चार मान रहना ही है और यहाँ की मिटाई बर्दाश्त होती है तथा भक्त लोग तब 'पलीसना' करते हैं, तो मिटाई खाकर 'पलीसना' की मौज क्यों न लूट लें ? और ऐसा सोच कर वह अगर चातुर्मास की गाने-बाने और मान-पढ़ाई का साधन बना लेता है तो क्या वह भगवान की आज्ञा का और अपने कर्त्तव्य का पालन करता है ? कहानि नहीं।

जो साधु चातुर्मास की आँखों की रक्षा एवं अधिक तप-संयम करने का अवसर न मान कर, जिह्वा-रुति या मान-दशाई का अवसर समझता है, भगवान् उसे पाप-भक्त कहते हैं। चातुर्मास के निषाद शेष काटने से जो तप-संयम बिंदु जा सकता था, उसे चातुर्मास में एक स्थान पर रहकर करना पड़ता है। चातुर्मास में जो एक से दूसरे स्थानों पर रहने का अवसर प्राप्त होता है, उसे भगवान् की आज्ञा के अनुसार पालना पड़ता है।

सोई का ईंधन अच्छी तरह देखे-भाले बिना काम में नहीं लाना चाहिये ।

गृहस्थ होने के कारण यद्यपि आप सम्पूर्ण अहिंसा का पालन कर सकते, तथापि आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि यतना साथ कार्य करने से गृहस्थ भी बहुत-से पापों से बच सकता है । गृहस्थ के कर्त्तव्यों पर कुछ प्रकाश डाला जाता है । इसके अनुसार चलने से आप परमात्मा के भक्त कहलाएंगे और उस 'मोहन-ती' के समीप पहुंचेंगे ।

अभी कुछ दिनों पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थीं । घनाढ्य और निर्धन का इस विषय में कोई भेद नहीं था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम जरूरत होती ही है । नीरोग रहने के लिए यह अत्यावश्यक है । हाथ से आटा पीसने में बहिनों का अच्छा व्यायाम होजाता है । वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं । परन्तु आजकल ची चक्की घरों से उठ गई और उसका स्थान पनचक्की ने कर लिया है । बहिनें आलसी हो गई हैं । वे अपने हाथ से करने में कष्ट मानती हैं और धीरे-धीरे षडृष्ण का भाव भी आने के लिए रोकने लगा है । इसका एक परिणाम तो यह दिखई देता है कि बहिनो ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है । अधिकांश बाइयाँ निर्दल निःसन्ध और तरह तरह के रोगों में प्रसव के समय अनेक बहिनो को भारी कष्ट उठाना पड़ना कईयों को तो प्राणों में भी हाथ धो बैठना पड़ता है । एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी बदौलत

आप हास्टरो को गाय लेंगे तो वह आपको बतलाएंगे कि पनचक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की में अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की से मश-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

गर्मी और वर्षा के कारण आटे में भी कीड़े पड़ जाते हैं, जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं, और ईंधन में भी।
बिना छना पानी लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवों की रक्षा करने में और हिंसा के घोर पाप से बचने में न मालूम क्यों आलस्य करते हैं? बड़े बड़े मटकों में भरा हुआ पानी कई दिनों तक खाली नहीं होता। पहले के भरे हुए पानी में दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचित् पहले का पानी आरम्भ में छान कर भरा गया हो, तो भी उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छना हुआ जल सदा के लिए छना हुआ नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी डाल देने से वह भी बिना छना होजाता है। इसे व्यवहार में लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की यतना मर्यादा पूर्वक की जाय, तो अहिंसा-धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप सामायिक धर्मध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर भी ध्यान देते हैं कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है?

पहनने-छोड़ने के कपड़ों की प्रतिलेखना करते हैं, परन्तु पानी छानने के कपड़े की ओर ध्यान ही नहीं जाता। मेठ-मेठानी की

दैन में ही भोजन नहीं कर पावे और रात्रि में ही भोजन
 सुख मिलती है।

रात्रि-भोजन की दुराद्यों इतनी स्थूल हैं कि उन्हें कभी न भोजन
 की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। रात्रि में चले विना
 द्वारा किया जाय, अंधेरा रहता ही है। कलिक प्रकार को देखकर
 तसे छोड़े आ जाते हैं और वह भोजन ने गिर जाते हैं। अगर
 इन अंधेरे में भोजन किया जाय, तो आँधर गिरने वाले जैव-
 ओ का पता लग ही नहीं सकता। इस प्रकार होने वाले जैव-
 त्रि-भोजन करने वाले अभय मरण और हिन्ना के पान से
 बच सकते। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीक होने वाले दोषों का
 न करावे हुए आचार्य हेनचन्द्र ने कहा है—

मेधां निषोलिका हन्ति, नृका कुपान्तोदरम् ।
 कुरुते मक्षिका वान्ति, कुटुरोगं च कोलिकः ॥
 कुरदको दारुत्वरुहं च, विततोऽपि मत्तव्ययान् ॥
 व्यञ्जनान्तर्निषवित्त्वातुं, विष्यति वृश्चिकः ॥
 तलमश्च गले कालः, स्वरमहाय जायते ।
 यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निरिभोदने ॥

—योगराज, दुर्लभ प्रकारा ।

—रात्रि में विरोध प्रकारा न होने के कारण अगर
 के साथ पेट में चली जाय, तो वह नेचराळि (बुद्धि)
 है। जूँ गिर जाय तो जजोदर नामक भयङ्कर रोग
 से वमन होता है। कोलिक (जैव विरोध) से को
 या लकड़ी की फेंत भोजन के साथ न्वाने में का

आप डाक्टरों को राय लेंगे तो वह आपको बतलाएंगे कि पनचक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की में अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की में मदा-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

गर्मी और वर्षा के कारण आटे में भी कीड़े पड़ जाते हैं, जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं, और ईंधन में भी।
 बिना छाना पानी लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवों की रक्षा करने में और हिंसा के घोर पाप से बचने में न मालूम क्यों आलस्य करते हैं? बड़े बड़े मटकों में भरा हुआ पानी कई दिनों तक खाली नहीं होता। पश्ले के भरे हुए पानी में दूसरा पानी ढालते रहते हैं। कदाचित् पहले का पानी आरम्भ में छान कर भरा गया हो, तो भी उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छाना हुआ जल सदा के लिए छाना हुआ नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी ढाल देने से वह भी बिना छाना हो जाता है। उसे व्यवहार में लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की चतना मर्यादा पूर्वक की जाय, तो अहिंसा-धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप नामाधिक धर्मध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर भी ध्यान देते हैं कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है?

पहनने-ओढ़ने के कपड़ों की प्रतिलेखना करते हैं, परन्तु पानी छानने के कपड़े की ओर ध्यान ही नहीं जाता। मेठ-मेठानी की

बार पहर के दिन में तो भोजन नहीं कर पाते और रात्रि में ही उन्हें सुनत मिलती है।

रात्रि-भोजन की सुराहियों इतनी स्थूल हैं कि उन्हें अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। रात्रि में पाए जितना भोजन किया जाय, उधेगा रहता ही है। दलिक प्रकार की देशद्वारा भोजन के लिए आ जाते हैं और वह भोजन में गिर जाते हैं। अगर भोजन के भोजन किया जाय, तो आकर गिरने वाले जीव-जन्तुओं का पता लग ही नहीं सकता। इस प्रकार दोनों अधरथाओं की रात्रि-भोजन करने वाले अभय भरण और दित्त के पाप से बच सकते हैं। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषों का निवारण हुए आपस में समझने से होता है—

मेषां रिपौलिषा इन्ति, मूषां पुपांजलोदरम् ।
पुरते मरिषा वान्ति, बुद्धिरोगं च कोलिषा ॥

बटवो दास्यन्ते च, बिलोति गलप्यमानम् ।
पुष्पजान्तिर्निवसितस्तदाहुः, बिभ्रति दृष्टिः ॥

मेषां गले बालः, स्वरमज्जाय आवते ।
पुष्पजो दृष्टोपाः सर्वेषां निरिभोजने ॥

—देवराज, दृष्टि प्रकाश ।

—रात्रि के दिनों प्रकाश न होने के कारण अगर कोई मेष पेट में बाल आवे, तो वह मेष दृष्टि । बुद्धि
है और पुष्पजो दृष्टोपाः नामक मेषद्वारा दृष्टि
में बलवान् होने के कारण वह मेष दिनों में दृष्टि
में बलवान् होने के कारण वह मेष दिनों में दृष्टि

पेट पुला और सूजी मारी,
बैद औषधी करी तयारी ।
नहि गाने बारी ॥

एह महीने में मुई नीकली मागर में भाई ॥६०॥

आप इस कविता की शान्दिक छुटियों पर ध्यान न देकर
उनके भावों पर ध्यान दीजिए । रात्रि-भोजन से होने वाली हानियों
के दृष्टांतरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक मुने जाते हैं ।
मागर के हकीम ने रोगों पर दिव्यमत पलाई, लेकिन रात्रि का भोजन
नहीं रखा । नवीजा यह हुआ कि उसे अपनी रज्जी में हाथ धोना
पड़ा । आजकल के वैद्यनिक भी रात्रि-भोजन को राहनी भोजन
बढ़ते हैं । रात्रि में पानी भी खाना-पीना छोड़ देते हैं । पक्षियों में
ही इस समय जाते वाले बर्डे भी रात में नहीं खाते । हाँ, बमर्गदह
त्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हें अपना सनभते हैं ? आप
कनुकरता करना समझ करते हैं ?

सारांश यह है कि रात्रि-भोजन कविता और स्वास्थ्य दोनों
की नाशक है । यह सब भाइयों और बहिनो को धर्म की
तथा ही तर्कों की दृष्टि से रात्रि भोजन का त्याग करना

आप इस कविता की शान्दिक छुटियों पर ध्यान न देकर
उनके भावों पर ध्यान दीजिए । रात्रि-भोजन से होने वाली हानियों
के दृष्टांतरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक मुने जाते हैं ।
मागर के हकीम ने रोगों पर दिव्यमत पलाई, लेकिन रात्रि का भोजन
नहीं रखा । नवीजा यह हुआ कि उसे अपनी रज्जी में हाथ धोना
पड़ा । आजकल के वैद्यनिक भी रात्रि-भोजन को राहनी भोजन
बढ़ते हैं । रात्रि में पानी भी खाना-पीना छोड़ देते हैं । पक्षियों में
ही इस समय जाते वाले बर्डे भी रात में नहीं खाते । हाँ, बमर्गदह
त्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हें अपना सनभते हैं ? आप
कनुकरता करना समझ करते हैं ?

जो बार के मास बहुत गहूँ और जमी के जहर में सभी पाने ।
जाने प्राणों में हाथ भी बैठे ।

बौद्ध (विहङ्ग) की ठगुलनी ने दिन भर एकदली का ।
दिया और रात को एकदली करने लगे । ठगुलनी ने केवल य
ही काम किया था कि भयंकर रोता हो गया । अनेक प्रकार ।
विरिन्ता करने पर भी वह न बच सकी ।

अनन्त दिवनाये जाने रहिरनुकरते ।

अनन्त मांसममं प्रोक्तं माहंरहेरनहर्निवा ॥

यहाँ मूर्ख होने के कारण यह भी मान और पानी को रक्षि
के समान समझा गया है । यह पाठे आनुवंशिक भाषा हो, जि
भी बिहने लोहे जलो में रात्रि क भोजनमान का त्याग करना
गया है । अन्तर रात्रिभोजन के अनेक दिव लोहे का विचार करके
जान हमका गया है ।

यहाँ जानते दिन बर्ताने की और जानका भवन आकर्षित
दिया गया है, यह अनेक दिन कहाने जाने, इतिह अनेक अनुप
बर्ताने बार क दिन आकाश है । अनेक दिन की माधुरी का
कहा है जो । यह हम कहाने का समय है, मान कहाने का
समय कहाने का जो का कहाने का । यह अनुप है । यह
कहाने का जो का कहाने का । यह अनुप है । यह
कहाने का जो का कहाने का । यह अनुप है । यह
कहाने का जो का कहाने का । यह अनुप है । यह

धिक्कार से डरते हैं, पर अधिक्कार के काम नहीं करते । 'पशु' कहलाने में अपना अपमान मानते हैं, मगर पशुओं के काम छोड़ना नहीं चाहते ।

अगर पशु और मनुष्य की तुलना की जाय तो मालूम होगा कि विभिन्न पशुओं की अपेक्षा मनुष्य कई बातों में गया-सीता है । सर्वप्रथम काम भोग को ही ले लीजिये । पशु की काम-वासना कितनी नर्यादित है ? स्त्री-जानि के पशु गर्भ धारण के अतिरिक्त कभी काम-मेवन नहीं करते । नर-जानीय पशु भी शेष समय में उनके पास नहीं जाते । मगर मनुष्य विषय-वासना का कीड़ा बना हुआ है । उसने मनन्त नर्यादाओं को लांघ कर घोर वञ्छ-हस्तता धारण की है । उसके लिए वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन एक बरीखे हैं । इस विषय में उसे समय-बसमय और गन्दागन्ध का कोई विवेक नहीं है ।

रखे-भुखे और रुखे-सूखे रोटी के कतिपय दुच्छों पर निर्वाह करके भी अपने स्वामी की भक्ति और रक्षा करने वाले कुत्ते की तुलना किस मनुष्य के साथ की जाय ? कुत्ता अपने स्वामी की रात-दिन रक्षा करता है, जब कि मनुष्य अपने स्वामी को—आजीविता देने वाले को—भी धोखा देने में नहीं चूकता ।

गाय और भैंस आदि दुधारु पशु घाम और खत जैसी चीजें खाकर उनके बढ़ते मनुष्य को अपने हृदय का रस—दूध देते हैं, जिनके बिना मनुष्य-समाज का काम चलना कठिन है ।

निह बहुत ही भयंकर प्राणी समझा जाता है, मगर क्या वह अपने मजारीय सिंह को मारकर खा जाता है ? नहीं । लेकिन

मनुष्यत्व की श्रेष्ठता इस कारण नहीं है कि वह अपनी
 से पुरे पानों ने पशुओं को भी ज्ञात कर दे, वरन् वह
 राजा इसलिए है कि सदगुणों को धारण करे, धर्म
 स्वयं जलित रहते हुए दूसरों के जीवन में सहायक
 जीवन का पूर्ण रूप में त्याग करे, आदर्श मनुष्य
 मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होवे। यह मनुष्य का कर्तव्य
 का अधिकार है।

के सामने अपना विवाह करते हैं। पंथों के समस्त
ता है और पंथें विरमे हैं। पुरुष, स्त्री का हाथ
धन देता है। इन प्रकार विवाह करके पुरुष
इसे कोई विचार नहीं देता। अगर स्त्री या पुरुष
प्रतिष्ठा भग्न करके पर-पुरुष या पर-स्त्री से
नया बंधन विचार का पात्र नहीं होता ? मनों
होते हैं और इसे विचार देते हैं।

श्री दशरथ महं हैं जो अपने-अपने अधिकार
 तथा स्वयं न करके ब्रह्म हैं के द्वारा
 अपने न दा वर नष्ट के लिये बातें
 न को ब्रह्म बनाए न बात हैं. ७.६ दश

आख्यान में बंद रहा है, हमारा धर्म गुजरात के इतिहास में मौजूद है और गुजराती लोग बड़े प्रेम से इसे गाते और पढ़ते हैं।

हरिमन्मथ सुव्रत नामक जनपद में पाटन एक विख्यात नगर था भी मौजूद है, जहाँ आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य कुमारपाल राजा हो चुका है। इसी पाटन में भिदरगज मोलंकी नामक एक राजा था। भिदरगज इतिहास-प्रसिद्ध राजा है। वह बड़ा ही बली, साहसी और बला-पुशाल राजा था। नगर उसमें एक बड़ा दोप भी था था। वह यह कि वह सम्पद था। उसकी सम्पदना ने उसे कलहिन पर दिया था।

कर्मदेवी नामक एक महिला का पति गमस्तेवार था। मिद-
राज सीतली ने कर्मदेवी को अपने घरमें ले जाकर उसे पति के
साथ एक कमरे में बिठा दिया। इसके पश्चात् वह
कर्मदेवी को हत्या कर दी। — इसी कर्मदेवी अपने पति को हत्या
करने के बाद 'जन्म' हो। कुछ दिनों बाद नाम 'देवी' को दे
कर उसे एक घर में बसाया गया। यह घर एक बड़े घर का प्राङ्ग-
ण में था। इस घर में एक बड़ा बाग़ था। इस बाग़ में एक
बड़ा पेड़ था। इस पेड़ के नीचे एक बड़ा कुत्ता रहता था।

[illegible]

उमने मिहना की भाँति कड़क कर उत्तर दिया—'राजा, तू मत्ता मद् में उन्मत्त हो रहा है। तुझे तनिक भी विवेक नहीं रहा। मैं अर्धतिदेव की रक्षा नहीं कर सकूँ, मगर याद रखना, शीघ्र ही एक दिन आयागा जब तू और अपनी रक्षा करने में असमर्थ जायेगा। तेरा उम मृगमत्ता और लम्पटता की कहानी इतिहास काले अक्षरों में लिखी जायेगी। तेरा यह गारबगाथा तेरो मन्ता और दूसरे लोग पूणा और लज्जा के साथ पढ़ेंगे और अनन्त वाक तेरे नाम पर धुंकेन गेंगे। गुनगान के कलक! आज जा पा कर ले। मर पुत्र का घात करके भी तू मेरा धर्म नहीं छीन सकता मेरे प्राण लेने का सामर्थ्य तुझ में है, मगर मेरा धर्म लेने के सामर्थ्य इन्द्र में भी नहीं है।' अपने पति और पुत्र की रक्षा कर वाली मैं कौन हूँ? धर्म ही अखिल ब्रह्माण्ड की रक्षा करता है उम्मी वस् की मैं रक्षा करूँगी। तेरा कोई भी अत्याचार, कोई अपैशाचिकता मुझे धर्म से ज्युत न कर सकेगी। तेरा प्रयत्न विफल होगा। समझ रखना, कर्मदेवी साधारण धातु की बनी छी नहीं है

अन्त में मिहिराज ने कर्मदेवी के पुत्र को भी काट डाला, लेकिन वह मत्ता अथवा लम्पट से नहीं डिगी, सो नहीं ही डिगी। अपने शत्रुओं के हृदय में डेपकैरी पैदा करने वाला प्रतापी मिहिराज एक अचला के आगे पराजित हो गया। कर्मदेवी दुनिया की दृष्टि में अचला ही थी, मगर असम मानव का जो असाधारण सामर्थ्य था, उसका कारण वह मत्ता ही नहीं, बरन प्रबला भी थी, जेना दैवियों मन्त्र का प्रभाव था।

अब हमें यह समझना पड़ेगा कि जवाहिर-किरगावली में क्या-क्या बातें हैं। यह हमें बता देंगे—

समझते हैं या नहीं ? मगर कामान्ध पुरुष कैसे समझ सकते हैं ! लेकिन आँखों की यह नीरव भाषा पढ़ने में स्त्रियों कभी भूल नहीं करती । वह घट से ताड़ लेती है । फिर जसमा जैसी विचक्षण स्त्री के लिए तो यह समझना कोई बड़ी बात नहीं थी । सिद्धराज जैसे ही जसमा की ओर बढ़ा कि जसमा समझ गई । वह जरा दूर हट गई ।

सिद्धराज ने जसमा से कहा—‘क्या तुम्हारा यह सुकुमार शरीर मिट्टी उठाने के लिए है जसमा ! जिस शरीर की रचना करने में विधाना ने अपना सारा चातुर्य खर्च कर दिया हो, उसका यह दुरुपयोग देखकर मुझे दया आती है । तुम्हारी सुकुमारता बहती है, तुम मिट्टी दोनों के लिए नहीं जन्मी हो । मैं आज से तुम्हारे लिए यह सुविधा किए देता हूँ कि तुम तालाब की पाल पर बैठे रहो करो और अपने बच्चे को पाला करो । मिट्टी दोनों के लिए और बढ़-तेरी हैं !’

माधारण स्त्री होती तो वह कदाचिन् राजा की इन मूर्खताओं में फँस जाती । मगर जसमा का दिल और दिमाग और ही तरह का था । वह राजा की इन कृपा का भेद समझ गई । तब ही वह विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा—‘आप अमरदाता हैं । आपने मुझ पर जो दया दिखाई, उसके लिए आभारी हूँ, लेकिन मेरा स्वभाव दूसरी ही तरह का है । मैं मिहनत-मजदूरी करके ही अपना पेट भरना अच्छा समझती हूँ । मेरी दृष्टि में बिना निन्दित हिन्दू मरना बुरा है ।’

अक्सर लोग परिश्रम से बचना चाहते हैं । निन्दित न करने पड़े, मगर भर पेट भोजन और आमोद प्रमोद के लालच निन्दित न करने

तो बस, घरती पर ही, उन्हें स्वर्ग दिखाई देने लगता है। पुरुष का प्रताप ही क्या जो बिना मिहनत किये स्नाना न मिला ! अपनी कमाई का अन्न खाकर जीने का तत्त्व बहुत कम लोगों ने सीखा है। जमना ऐसे ही व्यक्तियों में थी।

जसमा ने कहा—'मैं बिना मिहनत किये, बैठे-बैठे स्नाना पसन्द नहीं करती। बैठे-बैठे खाऊँ तो अनेक रोग हो जाएँ और फिर इलाज के लिए वैद्य फीस माँगे तो मैं गरीब मजदूरिन कशों से दूँ।'

डिस्टीरिया का रोग, जिसे अशिक्षित स्त्रियों भेडा या बेस कहती हैं और जिसके होने पर मीठा दाना आदि स्थानों पर रोने को ले जाया जाता है, बैठे रहने—परिधम न करने से होता है। यह रोग प्रायः धनिक स्त्रियों को ही होता है, गरीब स्त्रियों को नहीं। गरीब स्त्रियों श्मशान के पान रहने पर भी इस रोग का शिकार नहीं बनती और अमीर स्त्रियों को बन्द घर में बैठे भी यह रोग हो जाता है। अमली बात यह है कि जो स्त्रियाँ आनसी होती हैं, पारिधम नहीं करती, उन्हीं को यह मयानक बीमारी घेरती है। अगर अशिक्षा और कुमस्कारों के कारण लोग वास्तविकता को न समझ कर देवी-देवता को मिन्नत-यूजा करते हैं और डाक्टरों का निपुछाने-चुछाने परेशान हो जाते हैं। भोगी लोगों को, जो भैरवजी का प्रसाद डकार जाने हैं, कोई बीमारी नहीं होती; लेकिन भैरवजी का मानने वाले अगर उन्हें चढ़ावा न चढ़ावें तो अपनी हानि समझें हैं; यह सब ध्रम की बातें हैं। वास्तविक ज्ञान यह है कि परिधम न करने से ही डिस्टीरिया की बीमारी होती है।

जसमा पढ़ी-लिखी न होने पर भी परिधम का मूल्य समझ गई थी। उसने मिहिराज से कहा—'मैं काम करके खाती हूँ। मेरा कर्म अच्छी तरह चल रहा है। मेरे सम्बन्ध में आप चिन्ता न करें।'।

की जिन मोहनगारो है]

[
जसना का यह उत्तर सुन कर सिद्धराज ने सोचा—'जस
माधारण की नहीं मान्य होती। सौन्दर्य-सम्पत्ति के साथ उस
दुष्टि की विभूति भी है।'

सिद्धराज प्रकट में बोला—'जसना, मैं कहता हूँ, तू जङ्गल में
भटकने और सुख से शान तक मजदूरी करने के लिए नहीं है। तू
अपने सौन्दर्य को, अपनी सुकुमारता को और अपने असली
स्वरूप को नहीं समझती। क्या तेरा यह फूल-सा कोमल शरीर निट्टी
टोने के लिए है? तू मेरे शहर में चले। पाटन शहर देखकर ही तू
संकेत रह जायगी। पाटन इस पृथ्वी पर स्वर्ग है। शहर में तुझे
सच्ची आराम की जगह दिला दूंगा।'

जसना समझ गई कि इनने पहले जो प्रलोभन दिया था, उसमें
न फैसली देकर अब और बड़े प्रलोभन में फँसना चाहता है। मत्वक
से विचार करने वाले के लिए राजा की बात ठीक हो सकती है।
मत्वक कारण दुष्टता है, लेकिन इदय कुछ और ही कहता है।
आधुनिक शिक्षा ने मत्विक का विकास चाहे किया हो, नगर
इदय के विचारों को नष्टप्राय कर दिया है।

राजा की बात सुनकर जसना बोली—'कहाँ तो प्रकृति की
स्वच्छन्द सीला का धान, स्वभाव में सुन्दर, जानन्ददायक जङ्गल
और कहीं निगोहा नगर जहाँ गन्दगी की सीमा नहीं।' जिन प्रकार
नगी के गले कोड़े-मकोड़े निकल कर रेंगते हैं, उसी प्रकार नगरों के
नगर में मनुष्य निरव है। जगत् में नगर रहता है। जगत्
का स्वच्छ व सु और 'वस्तु' ध्यान रहने में कहीं। जगत् की
नया नगर बनना होगा तो बड़े-बड़े मनुष्य नगर छोड़कर जंगल

राजा जममा का हस्त सुन पशोपेश में पड़ गया। उसने सोचा—जममा इस पन्दे में भी नहीं फँसी। अब हमने एक नया तरीका खोजियार किया।

राजा ने कहा—'जममा' जान पड़ता है, तेरी बुद्धि बिगड़ी हुई है। गेंवारो का दिमाग ही उलटा होता है। चूँकि सोभी बात भी उलटी मान्द होती है। गेंवारो के साथ रहनी-रहता तू भी गेंवार हो गई है। इसी कारण अधिक अनुप्यो को देखकर तुझे पथराहट होती है। अधिक अनुप्यो में रहना बड़े भाग्य से मिलता है। गहरों का काम बहुत उपयोगी होता है। तू मगज की हलकी है। बन्दर क्या जाने खदम्य का स्वाद? तू जंगल की रहन वाली, शहरों के गये क्या समझ सकती है? जंगल जंगली जानवरों के समान की जगह है। तेरे साथ ही तो पाटन जैसा शहर ही है तू पल। शहर में रहने के लिए तुझे बहुत खर्च करना पड़ेगा।

हस्त ने जममा से कहा—'आप सगे 'टटाई' हो समझ लें कि मैं आपकी उत्तर देने का माहम कर रहा हूँ। लेकिन मैं बात की एक बात यह है कि मैं आपकी जगह पर हूँ इस ही मुझे जगल दिया है। शहरों के 'खदम' जैसे जैसे मन बहने हैं जगल के नहीं होते।

इस वक्त राजा जममा का हस्त सुन पशोपेश में पड़ गया। उसने सोचा—जममा इस पन्दे में भी नहीं फँसी। अब हमने एक नया तरीका खोजियार किया।

बहु भले ही बगीचे में जाय, राजमहल में निवास करे । मुझे बाग चा महल की आवश्यकता नहीं । प्राकृतिक जंगल को छोड़ कर नकली बगीचे में रहना कौन पसन्द करेगा ? मैं असली जंगल में ही भली हूँ ।

राजा—'इतनी खिद ! मैं गुजरात का राजा हूँ और तू एक मामूली मजदूरिनी है । मेरे सामने इस प्रकार की बातें करते तुझे शर्म मालूम नहीं होती ? तू मेरा कहना मान ले । जंगल में रह कर अपने सुन्दर शरीर का नाश मत कर । शहर में चल । वहाँ तुझे मृदङ्ग के मोठे स्वर और गान की मधुर तान सुनने को मिलेगी ।'

जसमा में जो शक्ति थी, वह आज हिन्दुस्तान में होनी तो हिन्दुस्तान धीन जाने कैसा देश होता ! जहाँ प्रलोभन हैं वहाँ शक्ति और साहस कहाँ ? विदेशी बन्धुओं के आकर्षण में भारतीय जनता बुगी तरह लुभा गई है । आज यह दशा है कि जिसके घर में बिलायती बस्तुएँ नहीं, वह घर नहीं—जंगल माना जाता है । अगर सामान्य हिन्दुस्तानियों की तरह जसमा लोभ में पड़ जाती तो उनके सर्वोत्थ की अनमोल निधि सुरक्षित रहती ? हर्गिज नहीं । आज के लोग फैशन की फॉलो में बुगी तरह फैस गये हैं ।

गले में फॉलो पड़ने पर ही मशारी का बन्दर उसकी उँगली के इशारे पर नाचता है । जंगल का बन्दर मशारी के नचाने पर क्यों नहीं नाचता ? कारण यही है कि उसके गले में फॉलो नहीं पड़ी है ।

आज करोड़ों रुपये फैशन के निमित्त बर्बाद हो रहे हैं और देश की सम्पत्ति विदेशों में चली जा रही है । बच्चों की नशा करने देखकर विचार आता है—इन बालकों का जीवन किस प्रकार सुख-

रेगा ? आज की रात किन्नी दूषित है कि वह बालकों के जीवन-सुधार की ओर जरा भी लक्ष्य नहीं देती । मगर यह सब कहे कौन ? अगर कोई बहता भी है तो वह गजट्रोही समझा जाता है ।

मिसराज से जममा कहती है—‘तुम्हारे गायनों और बाजों में बिप भरा है, मेरा मन उस बिप की ओर नहीं जाता । मुझे तो जंगल में रहने बाने मोर, पपीहा और कोयल की भीठी ध्वनि ही भली लगती है । मेरे कान इन्हीं की मधुर टेर के अभ्यासी हैं ।’

कोयल को चाहे सोने के पीजरे में रक्खी और उत्तम से उत्तम भोजन दो, फिर भी वह आनन्दविभोर होकर नहीं बोलेंगी । उसकी मस्त टेर आग की मजरी पर ही सुनाई देंगी । वह परतन्त्र होकर नहीं बोलेंगी, स्वतन्त्र होकर ही कूबेंगी ।

जममा कहती है—‘कहां तो मोर, पपीहा और कोयल का निसर्ग-सुन्दर मधुर गान और कहां निर्जीव बाजों की आवाज ! मोर, पपीहा और कोयल की अमृतमयी ध्वनि में जो आकर्षण है, जो मनोहरता है, मिठास है, वह नकली गीतों में कहां है ? मुझे तो इन पक्षियों की बोली ही प्यारी लगती है सहाराज, मैं जंगली और जेकारिन जो ठरती !’

मोर, पपीहा और कोयल की टेर से आज तक किसी में क्या नुकी बात पैदा हुई है ?

‘नहीं !’

और बैरयां के नाचों से कोई सुधार है ?

‘नहीं !’

जसमा का निर्भोक और निश्चित उत्तर सुन कर भी सिद्धराज ने हार न मानी। वह कहने लगा—‘पगली जममा ! मेरी बात पर भली भाँति विचार कर देख। क्यों इस जंगल में अपना सुन्दर जीवन व्यथा बर्बाद कर रही है ! तुझे अत्यन्त सुन्दर महल रहने को मिलेगा। बहुत-सी दामियाँ तेरा हुक्म बजाने को तैयार रहेंगी। मेरे पास हाथी, घोड़े, रथ आदि नभी कुछ है। वह सब तेरे ही होंगे। तेरा अच्छा स्वभाव देखकर ही तुझ से आग्रह करता हूँ। ऐसे स्वभाव वालों से प्रीति करना राजाओं का धर्म है।

राजा की नीयत की जसमा पहले ही ताड़ गई थी, अब उसके वाक्यों से वह एकदम स्पष्ट हो गई। जममा बोली—‘महाराज ! मुझे महलों की आवश्यकता नहीं है; मुझे भौंपड़ी ही बस है। मैंने महलों पर चढ़ना सीखा ही नहीं। मैं स्वयं अपने पति की दासी हूँ। मुझे और दामियों का क्या करना है ? दामी होने के साथ मैं अपने पति की स्वामिनी हूँ। ऐसी दशा में दामियों की स्वामिनी बनकर क्या करूँगी ?

सिद्धराज—ओह न, पगली ! क्यों सूखी-सूखी रोटियों पर गुजर करनी है ? मैं तुझे मेवा, मिष्ठान और पटूरम भोजन दूंगा। तू जानती है, मैं गुजरात का स्वामी हूँ। असौम सम्पत्ति और ऐश्वर्य मेरे यहाँ बिखरा पड़ा है। सोच ले। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा अभी राजमहल का द्वार तेरे लिए खुला है, जिसके लिए अपनारपे भी तरसती होगी।’

जसमा—आप बड़े दयालु हैं। इसी कारण मुझे पकवान और उत्तम भोजन सिलाना चाहते हैं। मगर मुझ अभागिनी के

भाग्य में यह सब कहीं है ? मेरे पेट में तो मक्की की घाट आ जाते हैं। वह पकवानों को पचा नहीं सकता। मुझे राख और दलिया भजना। पकवान और मेवा-मिष्ठान्न आपको मृषारिक हो। आप वास हाथी हैं, घोड़े हैं, मगर मैं उन पर सवारी करने में डग्ली हूँ कहीं गिर कर मर गई तो ? मेरे लिए तो भूरे भैंस ही मक्की है, जं दूध-दही देती है और हम सब आनन्द के साथ खाते हैं।'

संसार का काम घोड़े में चलता है या भैंस में ?

‘भैंस में।’

लेकिन अमल बात को लोग भूल जाते हैं। इसी कारण लोग घोड़े को पसन्द करते हैं।

मिदराज— क्या तुम ऐसे पटे पुरान और मोटे कपड़े पहनने के लिए प्रसिद्ध हो ? मैं ऐसे सहायक और चारीक वस्त्र दूंगा कि तुम्हारा एक रंग में श्रिया न रहेगा। तुम्हें हीरा और मोती के सुन्दर पहनने को मिलेंगे।

जो श्रिया गोल को ही नहीं का सर्वोत्तम आभूषण समझती है, उनके मन में बड़िया वस्त्र और हीरा मोती के आभूषणों की क्या काम हो सकती है ? उन्हें इन्ट्रानो वस्त्र देने का प्रयत्न भी नहीं किया सकता। और वे निगाह मजबूत वाली के लिए यह सुझाव— ‘क्या सुझाव है’ सकते गोलवनी अपने गोल का सूत्र देकर कहें कि ‘क्या सुझाव है’ नहीं।

जो वस्त्र... का मान्य प्रदर्शन है

... का मान्य प्रदर्शन है

बच्चों का चलन बढ़ गया है। यह प्रथा क्या और अच्छी समझते हैं ?

‘नहीं !’

मगर आज तो यह बहपन का चिह्न बन गया है। जो जितने बड़े घर की स्त्री, उमकें उतने ही चारीक बख्श ! बहपन मानों निर्लज्जा में हो गई ? क्या चारीक बख्श लाज टूक सकते हैं ? इन चारीक बख्शों की बदौलत भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका ध्यान नहीं किया जा सकता।

गड़नों और बख्शों का लालच स्त्रियों के लिए साधारण नहीं है। लेकिन जमना साधारण स्त्री भी नहीं है। वह कहती है—‘मुझे चारीक कपड़े नहीं चाहिए। मेरे शरीर पर तो खादों के कपड़े ही ठहर सकते हैं। चारीक कपड़े पहन कर मैं मजदूरी कैसे कर सकती हूँ ?’

मोटे कपड़े मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन कपड़े मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपड़ा पहनने वाली दाई अपना रक्षा लेने में भी संजीव करती है, इस डर से कि वहाँ कपड़ों में धूल न लग जाय। इन प्रकार चारीक बख्शों ने सन्तान-प्रेम भी छुड़ा दिया है।

जमना कहती है—‘मुझे न चारीक बख्शों की ही आवश्यकता है, न हीरो और मोतिया की हों। हारा मोतिया पहनने में तो जान का खतरा बढ़ जाता है। मेरा धर्म आभूषणों के बिना ही मुझे प्रेम करना है। फिर अगर भिगोर में मुझे क्या आवश्यकता है ? मैं अपने धर्म के ही प्रसन्न रहना चाहती हूँ। मुझे बख्शों का प्रसन्नता में कोई मतलब नहीं।’

राजा सभी प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। उसने अनेक कपड़े कैलाशे, फिर भी शिकार न किया। तब कुछ-कुछ निगारा भाव से राजा ने कहा—'तू जिस पति को प्रसन्न करना चाहती है, उसे दिखा तो मही। कौन है तेरा पति? देख वह कैसा है ?'

बड़े-बड़े महलों में और बड़-बड़ी हवेलियों में रहने वाले के लिए दाम्पत्य प्रेम का क्या मूल्य ? दाम्पत्य-प्रेम की कीमत जंगल वाले ही जानते हैं। सीता और राम ने अपने दाम्पत्य-प्रेम की वृद्धि जंगल में ही की थी। विषय-भोग के छोड़े दाम्पत्य-प्रेम की पवित्रता को क्या समझेंगे !

जबसा ने कहा—'वह जो कमर कम कर काम कर रहा है, जिसके हाथ में कुदानी है, जो अपने सावियों को माहम बैठाता हुआ मिट्टी खोद रहा है और जो मिट्टी खोदने में सब से आगे है, जिसकी कुदानी की खोद से घूँसी काँती है और जिसके मिर पर कुत्र गुये हैं, वही मेरा पति है। मैंने उनके मिर पर कुत्र गुँथ दिये हैं, जिसमें बड़ाबट के समय उसे विश्राम मिले।

जबसा के पति का नाम टीकम था। टीकम की और देखकर मिट्ठगात्र ईर्ष्या की आग में जल-मुन गया। उसने जबसा से कहा—'बस, वही होगा पति है।' कीचे के गले में रखी की साधा ! 'बस मिट्टी खोदने वाले मजूर के लिए ही तू मेरा अपमान कर रही है ? हमनी कीचे के पास नहीं मोहनी जबसा ! हमनी की रोया हम के साथ साथ रहने में ही है। तू मेरे महल में बस। तेरी गोवा महलों में बदेगी। तेरे पति को कुछ पर विश्राम भी मही है। देख न, तेरी

ही तरफ बह देदी-देदी नहरों में देख रहा है। उसकी नजर से साफ मालूम होता है कि उसका तेरे ऊपर न प्रेम है, न बिरहास ही है। मेरा आश्रमी तेरी बट्ट बया जाने ? मेरे अबिरवामी पति के साथ रहना पोर अपमान है। तू धिन्ता मत कर। तुझे रानी बना दूंगा।

सचमुच टीकम इसी ओर देख रहा था। वह सोचता था—
'राजा मेरी स्त्री से क्या बात कर रहा है ?'

राजा ने साम और दाम में बाम लेने के बाद भेदनीति से बाम-निवाहने की चेष्टा की। मगर जसमा को पुमलाना बालू में नेम निवाहना था।

जसमा बहने लगी—'राजा साहब, बहावत मतदूर है—'सौच की ओर नहीं।' मर्य मर्य निर्भय होता है। मेरे पति को मुझ पर पूर्ण बिरहास है। मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को भाई के समान समझती हूँ। पारम्परिक अबिरवास की भावना तो राज-परानों की ही सम्पत्ति है। हम दुरिष्टों को यह सम्पत्ति वहाँ नलोह होती है। अगर मुझे अपने पति पर अबिरवास हो तो उसे मुझ पर भी अबिरवास हो सक्ता है। मगर ऐसा नहीं है। मेरा पति आपकी देख रहा है, क्योंकि आपकी दृष्टि दिगड़ी हुई है।

राजा ने देखा, भेदनीति भी वहाँ बागमर नहीं हो सकी। तब सिद्धराज ने बहक कर कहा—'जसमा, तू मेरी माली नही मैं बीम हूँ ? बड़े-बड़े दूरबीन, राजा और मन्त्रियों भी मेरे बरतों में गिर चुके हैं और मेरी और बढ़ते ही बीम बढ़ते हैं। बन्दे भी मेरे हुक्म के सिवाय ज्ञान होने का मायम नहीं हो

मकता । फिर तू किस खेत की मूलो है ? तेरे पास क्या बल है जिसके बूते पर तू मेरा हुक्म टाल रही है ? आश्विर तो मजदूरी करने वाले की ही खी टहरी न ! तू किम मुँह में मेरे सामने धोती है ? एक बार फिर चेतावनी देता हूँ । विचार कर देस । इधर ममर बर्बाद न कर । क्या तेरे कहने से राजा अपना हठ छोड़ सकता है ?

भेदनीनि ने काम न दिया तो राजा ने दण्डनीनि प्रहण की । साधारण खी राजा की इस धमकी से दहल जाती । उसका हठ काँप उठता । वह बिबरा हो जाती या आँसू बहाने लगती । मगर धन्य जममा ! वह योग्यता तनिक भी विचलित न हुई । उसने उसी प्रकार कड़क कर उत्तर दिया—'बड़े-बड़े सूरमाओं को अपने घरों में झुकाने वाला खीर एक मजूरिन के तलुबे चाटने को तैयार हो जाय, यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है ? महाराज, आपकी यदादुरी का इससे बढ़ कर खीर क्या मयूत हो सकता है ? हाँ, मैं जानती हूँ कि आप गुजरात के स्वामी हैं और मैं असहाय खी हूँ । मैं यह भी जानती हूँ कि गवण लंका का प्रचण्ड प्रतापी राजा था और हमके पंजे में पड़ी मीठा असहाय थी । मगर सीता ने अपना धर्म नहीं छोड़ा । आप पूछते हैं—मेरे पास क्या बल है ? मेरे पास मनीत्व की शक्ति है, जो तीन लोक में अजेय है और जिस शक्ति की बदीलन मीठा आज भी अमर है ।

आपने बड़े-बड़े राजाओं को बरा में किया, यह ठीक है किन्तु आपका बल काया और माया पर ही तो है । आत्मा इन दोनों में जुड़ी है । मेरे गुरु न यह बात मुझे पहले से ही बता रक्खी है

आने की आवश्यकता आप को ही है। मैं होरा में ही हूँ अब क्या होरा में आऊँगी ?

यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। मैंने अब तक आपसे दानपत्र की है लेकिन अब मैं समझ गई कि आप मेरे पति के शत्रु हैं। मैं अपने पति के शत्रु का मुँह नहीं देखना चाहती। इसलिए अब मैं आपके सामने घूँघट निकालती हूँ। अब मैं आप से कोई बात नहीं करूँगी।'

बह बहकर जममा ने राजा के सामने घूँघट निकाल दिया। आश्चर्य घूँघट की प्रथा निताली हो गई है। शिरो अन्तर्गत और गुणधर्मों के आगे तो घूँघट दाखली नहीं, किन्तु देवर, ऊँठ आदि परिचित लोगों के सामने, जो उन्हें अपनी बहिन-बेटी समझते हैं, सम्मिलित घूँघट दाखली है। पहले दुष्ट और दुराचारियों के सामने घूँघट निकाला जाता था, जैसे जममा ने मिदरात्र की दुराचारिणी समझ कर उसके सामने घूँघट निकाल दिया।

सूरमा की कागे बसिया, चंदे न दुजों रंग।

बहो बहावन यही परिणाम है। जममा की तेजस्वी भावा बहो हुईं स्वयं और धर्म से संगत बानों का, काम में समुचित हो जाने मिदरात्र पर नैतिक भी प्रभाव न पड़ा। यह जममा की ओर से सर्वथा निराश हो गया।

जममा की अन्तिम व सन्तुष्ट बात सर्वदूर निरर्थक। डेढ़रा है मिदरात्र की अपनी अवमान को दण्ड की तरह भूम। का यह जममा का शत्रु की सहायता नहीं कर सकता था। १। २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १७। १८। १९। २०। २१। २२। २३। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३२। ३३। ३४। ३५। ३६। ३७। ३८। ३९। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०। ५१। ५२। ५३। ५४। ५५। ५६। ५७। ५८। ५९। ६०। ६१। ६२। ६३। ६४। ६५। ६६। ६७। ६८। ६९। ७०। ७१। ७२। ७३। ७४। ७५। ७६। ७७। ७८। ७९। ८०। ८१। ८२। ८३। ८४। ८५। ८६। ८७। ८८। ८९। ९०। ९१। ९२। ९३। ९४। ९५। ९६। ९७। ९८। ९९। १००।

नदी की, नारी के गौरव की और सन्मान की भी रक्षा की। बरकरार धिर-धमर हो गई। जसमा का जस इतिहास के पृष्ठों पर मुनहरे अक्षरों में चमक रहा है। आज भी लोग इससे प्रेरण पाते हैं।

कहते हैं—सती जसमा ने मरते-मरते सिद्धराज को शाप दिया था—‘राजा, तेरा ताज्जाब स्वाक्षी रहेगा और तेरा वंश नहीं चलेगा।

यह सब देख और सुनकर राजा का दिव दहल गया। वह अपनी करतूत पर पश्चान्ना होने लगा। ताज्जाब स्वाक्षी रहा।

जसमा ने कौन-सा शास्त्र पढ़ा था और किस गुरु ने उसे शिक्षा दी थी यह नहीं कहा जा सकता। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वह सर्वा पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मार्ग हमने अभी भी निभामा था।

मैंने व्याख्यान में कहा था—

ओ त्रिन मोहनगारो छे,
जीवन प्राण हमारो छे ।

इस प्रार्थना में बतलाया गया है कि रात्रीमती के प्यारे नेमो रबर हमें भी प्यारे लगते हैं। जसमा ने अपने पति टीकम के किर गुजरान के प्रतापी राजा को भी दुष्टरा दिया, तो क्या हमारा भी बान टीकम में छोटा है ? ‘नही !’

तो फिर हम मगवान की मोहनगारो बनाकर सँभार के बहुत पिन सुखों को आन भी जान क्यों न मार दें ? मगवान् को मोहन गारो मान कर धर्म का पालन करोगे तो परम कल्याण के मार्ग चलेगे ।



*** ईश्वर की खोज ***



श्रीमहावीर नमू' नर नायी ।

शासन जेहनो लाय रे प्रायी ॥

यह चौदोनवें तीर्थंकर भगवान् महावीर की प्रार्थना है। जो संप्र विद्वान् हैं वह भगवान् महावीर का ही हैं। साधु, साधक और साधिका, यह चतुर्विध संप्र भगवान् महावीर ने स्थापित किया है।

शिव भगवान् महावीर स्मृत रूप में हमारे सामने नहीं हैं। लेकिन जिसे भगवान् महावीर पर भ्रम है, उसे संन्यस्त छोड़िए कि चतुर्विध संप्र में ही भगवान् महावीर हैं। भगवान् तीर्थंकर ये और तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर कहलाते हैं। शिव तीर्थंकर नहीं हैं, लेकिन उनके बनाये तीर्थ मौजूद हैं। जिस कारीगर का बनाया हुआ किसी प्रकार और सुन्दर है तो निश्चय ही वह कारीगर वह विद्वान् होगा जिसका संप्र काव्य हजारों वर्ष की नींव हो जाने पर भी मौजूद है उस संप्र का स्थापक कोई होना ही चाहिए और भगवान् महावीर भगवान् संप्र के रूप में प्रत्यक्ष हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से हम में और भगवान् में समय का बहुत अन्तर है, लेकिन गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय में रहे थे। भगवान् ने ही गौतम से भी कहा था—

‘न हु जिणे अज दीसइ ।’

अर्थात्—गौतम ! आज तुझे जिन नहीं दीखते, (लेकिन तू इसके लिए सोच मत कर। उनके द्वारा उपदिष्ट स्वाद्धाद-मार्ग तो तेरी दृष्टि में है ही। तू यह देख कि वह मार्ग किसी अल्पज्ञ का बनलाया नहीं हो सकता। तूने न्यायमार्ग प्राप्त किया है, अतएव जिन को न देख पाने की परवाह मत कर। उनके उपदिष्ट मार्ग को ही देख कि वह सचा है या नहीं? अगर उनका मार्ग सचा है तो जिन हैं ही और बड़ मछे हैं।

प्रश्न होता है, भगवान् स्वयं मौजूद थे, फिर उन्होंने गौतम स्वामी से क्यों कहा कि आज तुझे जिन नहीं दिखलाई देते? इस कथन का अभिप्राय क्या है?

इस गाथा का अर्थ करते हुए डाक्टर हर्मन जैकोबी भी गड़बड़ में पड़ गये थे। अन्त में उन्होंने यह गाथा प्रक्षिप्त (बाद में मिलाई हुई) समझी। उनकी समझ का आधार यही था कि सुद भगवान् महावीर बैठे थे, फिर वह कैसे कह सकत कि आज तुझे जिन नहीं दीखते? इस कारण उन्होंने लिख दिया कि यह गाथा प्रक्षिप्त है।

डाक्टर हर्मन जैकोबी की दृष्टि बड़ी तक रहा, लेकिन वास्तव में यह गाथा प्रक्षिप्त नहीं है, सूत्रकार की ही मौलिक रचना है। भगवान् महावीर केवलज्ञानी जिन थे और गौतम स्वामी तुल्यस्थ थे।

बेबलशानी को बेबलशानी ही देना मरना है । दुःखमय नहीं हो
सकता । जगत् भीतम स्वामी, जो दुःखमय थे—बेबलशानी को बे
बल, नर नो बल शब्दों जमी समय बेबलशानी बलशाने । काया
मय ने कहा है—

‘ब्रह्मसूत्रं वामनस्य नमि ।’

न्यायत — सर्वज्ञ के लिए उद्देश्य नहीं है ।

इस गाथा में श्रीर ऊपर की गाथा में प्रकट है कि गीर्वाणी वल समय हृदयस्थ थे । इस कारण उन्हें पूर्ण करने के भगवान ने उपदेश दिया है । भगवान के कथन का अभिप्राय है कि—हे गीर्वाण ! मेरी हृदयस्थ-श्रवणा के कारण मैं तुम्हें केवल 'ज्ञान' नहीं दीवता । मेरा जिनपना तुम्हें मालूम नहीं होता । वही शरीर जिन नहीं है श्रीर जिन शरीर नहीं है ।

लिनपट नदी गभीर हो, लिनपट चेतन भाँय ।

जिन वरुन कह्यो और हैं, यह निज वर्णन नाथ ॥

साधारण जनता नेत्रों से दिखाई देने वाली कष्ट महाप्रति
 को जिन अमरुतों है, लेकिन यह महाप्रतिहार्य जित नहीं है।
 महाप्रतिहार्य तो मायावी—इन्द्रवासिष्ठा भी अपनी माया से
 मरने हैं। वास्तव में जिन तो येतना है और उस येतन पर
 जो जिन ही प्रत्यक्ष में देख सकते हैं।

इस कथन का आशय यह नहीं है कि जिन भगवान का श्रम नहीं होता, इसका ठीक आशय यही है कि जिन दशा वा न दशा का इन दुःखों से छुटने केवल-ज्ञान के सिवाय दु

नब प्रश्न उपस्थित होता है कि साधारण आदमी उन
 श्रद्धा कैसे करे ? जिन को हम पहचान नहीं सकते । ऐसी अवस्था
 में कोई भी हमें कह सकता है कि मैं जिन हूँ । जब हमें जिन दिख
 नहीं देते तो हम किसे वास्तविक जिन मानें और किसे न मानें ?

इस विषय में शास्त्र कहते हैं—बिना प्रमाण के किसी को जि
 न मानना ठीक ही है, लेकिन जिन भगवान को पहचानने के लि
 तुम्हारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण का साधन नहीं है । जिन को केवल
 प्रत्यक्ष से जान सकते हैं । तुम खद्यम्ब हो, इसलिए अनुमान
 निश्चय करना होगा । अनुमान प्रमाण से किस प्रकार निश्चय
 है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक आदमी यमुना नदी को बहती देखता है । वह प्रत्यक्ष
 यमुना की बहती देख रहा है, लेकिन कालिन्दी कहलाने वाली
 काजिजर पहाड़ से निकलने वाली यमुना का उद्गमस्थान उसे
 दीखता । उसे यह भी नहीं दीख पड़ता कि वह किस तरह समुद्र
 मिल गई है । इस प्रकार यमुना नदी सामने है, मगर हमका
 और अन्त उसे नजर नहीं आता, सिर्फ़ थोड़ा-सा मध्यभाग
 दिखाई देता है । इस मध्य भाग को देखकर मनुष्य को अपनी
 लगानी चाहिए कि जब इसका मध्य है तो आदि और अ
 भी होगा ही । हाँ, अगर मध्यभाग भी दिखाई न दे और आदि-
 मानने को कहा जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा एक अंश को
 कर दूसरे पर बिना देखे भी विश्वास करना न्याययुक्त है ।

उदाहरण की यही बात गौतम स्वामी के लिए भी समझा
 पात्रण । भगवान कहते हैं—गौतम ! तू मुझे जबर्दस्ती जिन

जानती थी कि पुरुष इतने मानहीन, बुद्धिहीन और सत्त्वहीन हैं। लोग स्त्रियों को कायर बतलाते हैं, मगर पुरुषों की कर्त्तव्य रही है। ऐसे पुरुषों से तो स्त्रियाँ ही अधिक बहादुर हैं।

फिर दुष्ट दुरशासन हुआ या मुदित जिनकी सींचकर ।
 ले दाहिने कर में वही निज केश-लोपन सींचकर ॥
 रख कर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध हरिणी सी हुई ।
 बोली विकसत रघुपति बाणी महा कठणामई—
 कठणसदन ! तुम कौरवों से संधि अब करने लगे ।
 विन्ता क्या सत्र पाण्डवों की शान्ति कर हरने लगे ॥
 हे वान ! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की क्या ।
 हे प्रायेना मत मूल जाना, पाद रखना सर्वथा ॥

रघुपति उग्र रूप धार करके कृष्ण और पाण्डवों के सामने अपने हृदय के भाव प्रकट कर रही है। रघुपति का कठण-कथन कर कृष्ण के रथके ओढ़े और समस्त प्रकृति भी जैसे तन्मय रह गयी। सब लोग अचिंत हो गये। सोचने लगे—आज रघुपति अपने इस का सारी क्या शक्तियों के मार्ग से कृष्ण के आगे उड़ेल रही है।

दुरशासन द्वारा स्त्रीके हृदय केशों को अपने दाहिने हाथ में और बावें हाथ अपनी छाती पर रखकर रघुपति ने कृष्ण से कहा—प्रभो ! आप संधि करने आते हैं ? और सिर्फ पाँच गाँव लेकर करेंगे ? ठीक है कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विशाल राज्य में से केवल पाँच गाँव देकर संधि न कर लेगा ? फिर आप सरीखे संधि का बाग़े दूत क्यों हैं, वहाँ तो कहना ही क्या है ? वहाँ संधि होने की क्या ही क्या हो सकती है ? आप संधि करके पाण्डवों की वि

द्रौपदी बाण से बिंधी हुई दिरंगी की तरह रोने लगी । कहा

कह कर बचन यह दुःख से तब द्रौपदी रोने लगी ।

नेत्राश्रु धारा पान से कुरा अंग को धोने लगी ॥

हो द्रवण करके अबण उसकी प्रार्थना कठणामगी ।

देने लगे निज कर उठाकर मान्दवन उसको डगी ॥

द्रौपदी अपनी आँखों के आँसुओं से अपने दुबले शरीर जैसे स्नान कराने लगी । हृदय के घोर संताप-संतप्त शरीर को म ठंडा करने का निष्फल यत्न करने लगी । निष्फल यत्न हमबिल उसके आँसू भी गरम हो थे और वनमें संताप मित्रों के बरतने ही सकता था ।

द्रौपदी की प्रार्थना सुन कर कृष्ण का हृदय भी पिघल ग फिर भी उन्होंने अपने को संभाला और हाथ उठाकर वह द्रौपदी मान्दवना देने लगे ।

द्रौपदी की बातों का उत्तर देना कृष्ण को भी कठिन जान प कृष्णजी द्रौपदी की वही बातें सत्य म नते हैं, लेकिन क्या कृष्ण को संधि की रचना भंग करके धर्मराज में कह देना चाहिए कि अब संधि की बात मन करो । एक बार दूत भेज ही दिया था, क्यादा पंचायत में पड़ने की जरूरत नहीं है । दुर्योधन दुजना वह यो मानने का नहीं । उसमें कोई भी न्याययुक्त बात कहना उ में बीज बीना है । अतएव समग्र न स्विकार लवाइ की नैवारी क द्रौपदी की बातों की सचाई समझते हुए भी युद्धिमान् कृष्ण ने नही कहा । बल्कि वह द्रौपदी को मान्दवना देने लगे । उन्होंने अ न्येय नहीं छोड़ा ।

चित्त का चंचल हो जाना—स्वाभाविक है। साधारण मनुष्य को ऐसा ही होता है। लेकिन मेरा जन्म मनुष्य प्रकृत को ही में ही मिलाने के लिए नहीं है। मैं अपने आचरण द्वारा मानव-प्रकृत को शुद्ध करके सत्य पर लाना चाहता हूँ। यही मेरा जीवन-उद्देश्य है। अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो।

कृष्णजी की यह भूमिका सुनकर लोग असुकरता के साथ प्रतीक्षा करने लगे कि देखो, द्रौपदी की बातों का कृष्णजी क्या उत्तर देते हैं। इस समय धर्मराज को बहुत प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगे—‘संधि की बात मैंने ही चलाई थी, लेकिन द्रौपदी ने अपनी बातों से मेरी योजना निर्बल बना दी थी। द्रौपदी ने मुझ पर मार्ग उत्तर दायित्व डाल कर एक प्रकार से मुझे कायर मिट्ट किया है। भाई भी द्रौपदी की बातों से महमत हैं। अभी तक वह चुप रहे मगर द्रौपदी ने अपना अधिकार नहीं छोड़ा। उमने सदन भी तो बहुत किया है ! सबसे अधिक अपमान उसी का जो हुआ है।

द्रौपदी की बात का उत्तर देने में धर्मराज अपनी असमर्थता अनुभव करते थे। उमने धर्मराज पर भी अभियोग लगाया था। मगर कृष्ण का सहारा मिलने से उन्हें प्रमन्नता हुई।

कृष्णजी की बात सुनकर सब लोग आश्चर्य करने लगे कि द्रौपदी की यह प्रबल युक्तियों से परिपूर्ण बातें भी कृष्णजी को नहीं जँची ! सब विस्मय में डूबे हैं और धर्मराज प्रमन्नता अनुभव कर रहे हैं।

इस अवस्था में कृष्णजी कहने लगे—‘द्रौपदी ! तुम्हारी बातें नीति और युक्तियों में से भरी हैं, फिर भी मुझे जँचती नहीं हैं।

मैंने सच बातें कह दी हैं । लेकिन मुझे अपना कर्त्तव्य करने तुमने जो कुछ कहा है सो आवेश के बराबर हो कर ही । तुम मंत्रि-वार्त्ता से दुस्मिन् हुई हो । तुम मोचनी हो—पाँच गाँवों से इमांग कैसे चलेगा ? और इस प्रकार मंथि कर लेने में उनकी जितनी हमारी दार समझी जायेगी । द्रोपदी ! तुमने वन में रह कर अपना काम चलाया है; इसलिए शांभुद पाँच गाँव लेकर काम में तुम्हें कठिनाई नहीं भी मालूम होती हो, तो भी इस प्रकार काम में तुम्हें कौरवों की गुरुता और अपनी लघुता प्रतीत होती है । इस कारणों से तुम मंथि का विरोध कर रही हो । लेकिन तुम्हें यह मालूम कि मंथि करने में क्या रहस्य छिपा हुआ है । यह बात जानना हूँ या धर्मराज जानते हैं । मंथि में पाँच गाँव राज्य करने लिए मैंने नहीं माँगे हैं और न कौरवों में भयभीत होकर ही ले लिया है । कौरवों की दुष्टता का नाश करने के लिए ही यह मैं उपस्थित की गई है । अगर कौरव पाँच गाँव दे दंगे तो बड़े बड़े कहलायेंगे । मंसार उन्हें पृष्ठा की दृष्टि से देखेगा, कोई आदमी किसी के पास एक करोड़ की धरोहर रख देना है और फिर उसे पाँच रुपया लेकर फैमला कर लेना है; तो पाँच रुपये में फैमला करने वाले का मंसार में यश हो होगा । पाँच रुपया देने वाला मोचेगा । एक करोड़ के बदले पाँच रुपया देने में मुझे मंसार क्या कहेगा । यही बात पाँच ग्राम लेकर मंथि करने में है ।

विशाल राज्य के बदले बिक्रि पाँच ग्रामों से मंतुष्ट हो जान पड़ेगा तो कल्याण ही है । हाँ इसमें कौरवों की ही लघुता है । मैं लड़ाई करने के बदले इस प्रकारका उत्तम आदर्श पेश कर रहा हूँ । इस मंथि से समार पाँचों की प्रशंसा करेगा सभी क्षीण मुक्त कंठ में पाँचों की मगदना करते हुए कहेंगे—पाँच

ने बाग़द बर्ष तक बन में और एक बर्ष अज्ञान रह कर भी अपने अधिकार का राज्य केवल शान्ति के लिए छोड़ दिया !

क्रोध से आवेश हो आता है । मगर क्रोध का त्याग करना माचारण्य बात नहीं है ।

‘पट खींचने के समय में जो कुछ प्रमाण तुम्हें मिला ।’

दुःशासन द्वारा पट खींचे जाने के समय सभा में खड़ी होकर तुमने भीष्म, शैल्य, धृतराष्ट्र आदि सब से न्याय की भित्ति माँगी थी । न्याय भी क्या ? केवल यह कि धर्मराज अगर जुए में पहले अपने आपको हार गये हों तो फिर उन्हें यह अधिकार कहाँ रहता है कि वे मुझे हारें ? हाँ अगर पहले मुझे हारा हो और फिर अपने आप को, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । तुम्हारे बहुत कहने-सुनने पर भी किसी ने न्याय दिया था ? तुम उस समय की बात समझ करो ।

‘द्रौपदी ! तुम इन वेशों को बनला रही हो लेकिन इनके साथ ही उस समय की बात भूमी जा रही हो जब तुम्हें किसी ने न्याय नहीं दिया और तुमने सब सब छोड़ दिया और जब मन ही मन कहा—‘प्रभो ! शरीर, लाज, तन, मन, धन आदि तुम्हें सौंर चुकी है । अब तू चिन्ता कर, मुझे चिन्ता नहीं है । इस प्रकार कह कर निर्दल बन गई थी, तब तुम्हारी रक्षा हुई थी या नहीं ? दुःशामन कहा क्यों था, लेकिन तुम्हारा पीर खींचते, खींचते तो वह भी यह गया । उस समय किमने तुम्हारी रक्षा की थी ?’

महा रत्नो उस समय पर जो अस्तित्व उग का प्राप्त है ।

महा द्वितीय पारद्वी का और अस्तित्व महान है ।

‘द्रौपदी ! तुम्हें उस अस्तित्व पर विश्वास रखना चाहिए ।

‘ मर्त्य सु मर्त्य । ’

सात्य विश्वास ही ईश्वर है, यह समझ कर सात्य पर भरोसा रखो। सात्य पर विश्वास होगा तो ईश्वर पर भी विश्वास होगा।

कृष्ण ने कहा—‘ त्रीपरी ! जिसने तुम्हारे बख्त बचाप, वही सात्य तुम्हारी बात रखेगा। तुम शास्त्र होओ ! उद्योगना के बरीमूव होकर तुम इस समय मरने को मूल रही हो । ’

तुम्हें जीम की प्रतिज्ञा पूर्ण न होने की चिन्ता है, लेकिन इसमें सात्य पर अविश्वास होगा है, इसकी चिन्ता है या नहीं ? पीर बीचने के समय माँस पीर अर्जुन काग आये थे ? जिस सात्य का अन्तर्निहित प्रभाव तुम जान चुकी हो, उसे क्यों मुँताये देती हो ? तुम सायागल की नहीं हो, संसार को अनुग्रह सिखा देने वाली आवरो देती हो। तुम पावइयो के साथ बन-बन मदकी हो, तुमने बिराट के पराधीनत्व लिया है, लेकिन यह सब किया है शायद जाने की आशा से। मैं कहना हूँ—तुम ईश्वर बनने के लिए ईश्वर को भरो। जरा से शायद क दुकड़े पर उबला कर सात्य पर अविश्वास मत करो।

माइको ! और बड़ियो ! कृष्णजी का यह उपदेश केवल त्रीपरी के लिए नहीं है। यह वर्तमान और भविष्य के लिए भी है। इतिहास और भूगोल समयानुसार बदलता रहता है, लेकिन सात्य का वह अनदेखा सात्य की मजि नदेव रहेगा। जैसे माय घुब है वही प्रकाश वह अनदेखा भी धुब है।

कृष्ण कहते हैं—‘ भविष्य हो जाने पर तुम्हारा मिर न मूँक जायगा तो क्या वह भविष्य न हो सकेगा ? मिर का मूँकन भी है । वना जा सकता है। सोईन्दर बर्ष की भावना से मूँकन करके दुःख मिर अन्तर्निहित का मूँकन है। जीम की प्रतिज्ञा भी अन्तर्निहित

उसमें सादे शामठ योजन ऊपर मौमनम बन है और उसमें भी छत्तीस हजार योजन ऊपर पाण्डुक बन है। उस पाण्डुक बन के दाग अभिषेक शिला है। तीर्थङ्कर के जन्म के समय इन्द्र उन्हें उस अभिषेक-शिला पर ले जाते हैं और वहाँ उनका अभिषेक करते हैं। उपनिषद् में कहा है—

‘देवो भूत्वा देवं यजेत् ।’

अर्थात्—इंश्वर बन कर इंश्वर को देव—इंश्वर की पूजा कर। यानी अपने आत्मा का स्वरूप पहचान ले, बाहर के भगड़े दूर कर। हम भी परमात्मा की पूजा करते हैं, मगर धूप, दीप, फल और मिठाई आदि से नहीं। ऐसा करना जड़-पूजा है। सही पूजा यह है जिसमें पूज्य और पूजक का एकीकरण हो जाय। जैसे गहर की पुतली पानी की पूजा करने में उसके साथ एकमेक हो जाती है—उसी में मिल जाती है, उसी प्रकार इंश्वर की पूजा करना चाहे जिस भाव में कहा है—

‘किञ्चित्-चन्द्रिय-गहिमा’

अर्थात्—हे प्रभो ! तू कीर्ति है, चन्द्रित है और पूजित है। साधु भी यह पाठ बोलते हैं। यह पाठ महावश्यक के दूसरे अध्ययन का है। भगवान की पूजा यदि केवल धूप, दीप आदि से ही हो सकती होनी तो साधु उनकी पूजा कैसे कर सकते थे ?

परमात्मा की पूजा के लिए पूजक को सर्व प्रथम यह विचारना चाहिए कि मैं कौन हूँ। हे पूजक ! क्या तू हाद, मास, तार या केश है ? अगर तेरी यही धारणा है तो तू इंश्वर की पूजा के लिए अयोग्य। ‘तू देवो भूत्वा देवं यजेत्’ तबव नहीं जान सकता। क्योंकि हाद-

मांस का पिष्ट अर्पण है, जो ईश्वर की पूजा में नहीं टिक सकता। अपने आपकी मांस का पिष्ट समझने वाला पहले तो ईश्वर की पूजा करेगा नहीं, अगर करेगा भी तो केवल मांस पिष्ट बढ़ाने के लिए। अगर मांस पिष्ट बढ़ाने के लिए ईश्वर की पूजा की और उसमें मांस बढ़ गया तो पहले फिरने में और कष्ट होगा, मरने पर उठाने वालों को कष्ट होगा और जलाने में लकड़ियाँ अधिक लगेंगी।

मैं पूछता हूँ: आप देव हैं या देवी हैं ? पर है या परवान है आप होने हम देवी हैं, हम परवाले हैं। पर तो घूना, ईंट या पत्थर का होता है। अगर देखना आप कही पर ही तो नहीं बन गये हैं ? अगर ही अपने आपकी परवान न मान कर पर ही मान लिया तो दही बहरी होगी।

‘देवी परवामासीति देवी’ अर्थात् देह जिसका है, जो स्वयं देह नहीं—बह देवी है। निश्चय समझे— मैं हाथवान हूँ स्वयं हाथ नहीं हूँ। या निश्चय होने पर तुम देव बन कर देव की पूजा के योग्य अधिकारी बन सकोगे। नीचा से कहा है—

इन्द्रियाणि परमाणाः, इन्द्रियेभ्यो परं मताः।

मनसाहुः परा बुद्धिः, की बुद्धेः परमातु मः ॥

सूक्ष्म बुद्धि, मन का बुद्धि नहीं है। बान बुद्धि की गति देख कर सब समझ कर लेना होगा।

जिसमें हम प्रथम ईश्वर को समझ लिया है, वह ईश्वर की रीति से वाग्व्यपन की प्रियता और न ईश्वर के नाम पर ब्रह्म की ब्रह्म। वह वही है जो ईश्वर ईश्वर की प्रकृति की निर

करेगा। जर्मन लोग ईंग्लैण्ड वालों को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और ईंग्लैण्ड वाले जर्मनों को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। अब बेचारा ईश्वर किम हो रक्षा करे और किसे मार डाले ? इस किस का पक्ष ले ? यह ईश्वर की मर्जी प्रार्थना नहीं है। ऐसी प्रार्थना करने वाला ईश्वर को समझता ही नहीं है।

कहा जाता है कि मिकन्दर के शाय में उमरु गजु-वय की ओर से आया हुआ तीर चुभ गया। मिकन्दर आग बबूता हो गया और उसने तीर मारने वाले की जानि के दो हजार कैदियों के निर कटवा लिये। क्या यह ईश्वर की जानिना है ? क्या यह न्याय है ? लेकिन मिकन्दर के सामने कौन यह प्रश्न उपस्थित करना ? ईश्वर की मर्जी पूजा की आत्मा को उन्नत बनाने के उद्देश्य में ही निहित है। जिसने आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया है, उसने परमात्मा पा लिया है। परमात्मा की स्यात्र आत्मा में तन्मय होने पर समाप्त हो जाती है।

(३)

शराब न पीना । आज शराब के कई सुन्दर-सुन्दर नाम रख लिये गये हैं । बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली सब मादक वस्तुएँ शराब की श्रेणी में ही हैं । गाजा, भँग, खीरी सिगरेट आदि की गणना मादक द्रव्यों में होती है ।

(४)

वेश्या गमन न करना । माधुष्यों के उपदेश से वेश्या भी वेश्य वृत्ति छोड़ देती है । कुलीन जनों को तो वेश्या गमन छोड़ना ही चाहिए ।

(५)

परस्त्री गमन न करना । बहुत-से लोग परस्त्री का अर्थ या लगाते हैं कि जिस स्त्री पर दूसरे किसी पुरुष का स्वामित्व हो, वह परस्त्री है । वेश्या पर किसी का स्वामित्व नहीं, अतएव वह परस्त्री नहीं है । इस कुतर्क को टालने के लिए यहाँ वेश्या और परस्त्री के त्याग अलग-अलग बताया है ।

(६)

शिकार न खेलना । आजकल के कई रईस मकिलियों का भी शिकार खेलने लगे हैं । वे लोग कारुड और शकर जमीन पर बिखेर देते हैं और जब मकिलियाँ शकर पर बैठती हैं तब दियासलाई लगा देते हैं । चेचामी मकिलियों को उड़ती देखकर क्रूरता और पिशाचना की दैमी होमते हैं । यह कितना दानवीय कृत्य है ।

सोंप, बिच्छू आदि जंतुओं का, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, मारना मर्यादा बनाम है । कई लोग कहते हैं—काज नहीं

ज्या ही बल करेगा । मगर ऐसा समझकर उन्हें मारना घोर अन्याय है । कौन भविष्य में अपराध करेगा और कौन नहीं, यह कौन जानता है । मनुष्य भी भविष्य में अपराध कर सकता है तो या सभी मनुष्यों को काँगी पर लटका देना न्याय है ?

(9)

घोरी न करना । जो घोरी राज्य के बानून के अनुसार दण्ड-
नीय समझी जाती है और लोक में निन्दनीय मानी जाती है, कम
से कम ऐसी गलत घोरी से सदैव बचना चाहिए ।

(2)

विवाह आदि के अवसरों पर गालियों न गाना, अश्लील गीत न गाना, बाला मुँह नहीं बनाना ।

(1)

दिय-जन की सज्जु होने पर बिलस-बिलस कर न सेना और
हाथी एवं साया पीटकर न सेना ।

(୧୦)

बच्चों को भूख का टीका ज़ादि का भद दिलाकर बाहर न
बलना ।

(११)

सुख-मोक्ष मे बरना : ताछ मे सुख-मोक्ष वा उल्लेख बर्ना
नहीं मिलेता ।

(१३)

ठहराव करके घर या कन्या के निमित्त पैसा न लेना ।

(१४)

विवाह में बेरया न बुलाना । बेरया बुलाकर रमका गान नृत्य कराने से दुराचार का प्रचार होता है और दुनियाँ विगड़ती है ।

(१५)

तेरह वर्ष से कम आयु की कन्या और अठारह वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह न करना ।

(१६)

महीने में अष्टमी और चतुर्दशी को कम से कम चार उपवास करना । उपवास और धारण-पारण नियमपूर्वक करने वाला ठाकुरों की हजारों रुपया देने से बचा रहता है और स्वस्थ रहता है । पाप से भी बचाव होता है ।

(१७)

हिंदी मनुष्य में घृणा मन करो । शस्त्रैव कहलाने वाले लोग भी तुम्हारे ही भाई हैं । यदि तुम्हारा बहुत उपकार करने हैं । उनका भूख कर भी तिग्गहार मन करो ।

(१८)

आत्मभयमय जीवन मन बनाओ । आत्मभय मनुष्य का सदावर्त गुण है । आत्मभय के कारण लोग अधर्म में प्रवृत्त होते हैं ।

एकलक्षः परमात्मप्राप्ति के सरल साधन]

(१६)

जीवन पौ संयममय बनाओ । धर्म का ही आचरण प
 ज्ञान का उपार्जन करो, मन्मगति में समय धिताओ । भगवान
 भजन करो ।

(२०)

जिन वपनों में बड़ी लगती हैं, वह न पहनना । लो गाय लो
 में पूजनीय माना जाती हैं और जो अत्यन्त उपवासक और रक्त
 हैं उनको बड़ी में समर्पित करो वो पहनना सर्वथा अनुचित है
 जो वपने अधिकार योग्य होते हैं और छोटी वपनों में लज्जा न
 होने, लज्जा शब्द से रहा मुक्त माना गया है और निर्लज्जता
 शब्द है

नाम ले-लेकर कहने लगी—‘हाय ! उस भगतन की करतूत देखो ! वस पाविनी ने मुझे चैर भँजाने के लिए मेरे लड़के को मार डाला ! दाकिन ने मेरा साल खा लिया हाय ! मेरे लड़के को गन्ना घोटकर मार डाला !’

आमिर न्यायालय में मुकद्दमा पेश हुआ । दुर्गाचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लड़के को मार डालने का अभियोग लगाया । सदाचारिणी को भी न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा । उसने मोचा—बड़ी विचित्र घटना है । मैं उस लड़के के विषय में कुछ नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है । गौर कुद भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा ।

दुर्गादा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन में कुछ गवाह भी पेश किये । सदाचारिणी से पूछा गया—‘क्या तुमने इस लड़के की हत्या की है ?’

सदाचारिणी—नहीं, मैंने लड़के को नहीं मारा; किमने मारा है, यह भा मैं नहीं जानती और न मुझे किसी पर शक ही है ।

सामना बादशाह के पास पहुँचाया गया । बादशाह बड़ा बुद्धिमान और चतुर था । उसने सदाचारिणी को भली भाँति देखा और मोचा—बोड बुद्ध भी कहें, मयून बुद्ध भी हो पर यह निरिक्त मानूस होना है कि इस लड़के की हत्या नहीं की ।

बादशाह का बजौर भी बड़ा बुद्धिमान था । उसने कहा—इस मामले में कानून की किरायें मददगार नहीं होगी । यह मेरे सुपु की ज़िम्मे । मैं इसकी जाँच करूँगा ।

बादशाह ने बजीर को मानला मौँप दिया। बजीर दोनों स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर गया। वह उस सदाचारिणी को साथ लेकर एक और जाने लगा। सदाचारिणी ने बजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त में कदापि नहीं जा सकती। आप दो पूछना चाहें, वही पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त जाना धर्म नहीं है, फिर वह चाहे सगा याप ही क्यों न हो।

बजीर ने धीमे स्वर में कहा—तुम एक बात मेरी मानो तो मैं दूरों कर दूंगा।

सदाचारिणी—आपकी बात सुने बिना मैं नहीं कह सकती कि मैं इसे मान ही लूँगी। अगर धर्म थिरक जाव नहीं हुई तो मान लूँगी, अन्यथा जान देना मजूर है।

बजीर - मैं समझता धर्म नहीं जाने दूँगा, तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—आप उस न जाने योग्य बात हैं तो मारु क्यों नहीं कहते ?

बजीर - मैं समझता हूँ कि तुमने लड़के को

मारा है न ?

सदाचारिणी - हाँ, मैंने उसे मारा है।

बजीर - मैं समझता हूँ कि तुमने लड़के को मारा है न ?

सदाचारिणी - हाँ, मैंने उसे मारा है।

चाहें तो शूली पर चढ़ा सकते हैं—फाँसी पर लटकाने का आपकी अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा ।

इतना कह कर वह वहाँ से चल दी । बजीर ने कहा—‘देखो, समझ लो । न मानोगी तो मारी जाओगी ।’ सदाचारिणी ने कहा—‘आपकी मर्जी । यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है । आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है ।’

बजीर ने सोच लिया—‘यह सही सची और सही है ।

इसके बाद बजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—‘तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी ।’

कुलटा—‘मैं तो जीती हुई हूँ ही । मेरे पास बहुत से समूत हैं ।

बजीर—‘नहीं, अभी संदेह है । वह बाई हत्यारिणी नहीं है ।

कुलटा—‘आप इस के लाल में तो नहीं फँस गये ? वह बड़ी धूर्ता है ।

बजीर—‘यह संदेह करना व्यर्थ है ।

कुलटा—‘फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलावें ?

बजीर—‘अच्छा मेरी बात मानो ।

कुलटा—‘क्या ?

बजीर—‘तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूँगा कि तुम सची हो ।

कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी । बजीर ने उसे रोक दिया और उल्लाह को बुला कर कहा—‘इसे ले जाकर बेत लगाओ ।

जल्दा उसे बेरहमी से पीटने लगा। वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो। जल्दा ने पूछा—‘तो बता, लड़के को किसने मारा है?’ बुलढा ने मधी धान स्वीकार कर ली। मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है।

बजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया। कदा—लड़के की हत्या उसकी माँ ने ही की है।

बादशाह ने कदा—यह बात कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार टाले ! लोग अन्याय का नदेह करेंगे।

बजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नहीं है। धर्मशास्त्र के मार पहलाधम लज्जा है। जहाँ लज्जा है, वहाँ दया है। मैं ने को लज्जा का परीक्षा की। पहली गार्ड ने मरना स्वीकार किया, राज तजना स्वीकार न किया। वह धर्मशीला है। उस दूसरी ने भी कलंक लगाया और फर आज देने की तैयार हो गई। तब उस पटवाया ना लड़के की हत्या करना स्वीकार कर

गया मामला बंद हो गया। मध्यरात्रि बाद के मर मदा हुआ मर गया। बादशाह ने मध्यरात्र के मर मदा देकर कहा—

तुम नरा बहिन हो

महाबाहिरणी बाई ने उठ कर कहा—'आपके अनुग्रह के आभारी हूँ। मैं आपके आदेशानुसार यही गौरी हूँ कि या मेरे निमित्त से न मारी जाय। इस पर दया की जाय।'

बाइसाह ने बंदर से कहा—'तुम्हारी बात बिलकुल सत्य जितने आशा होगी, उतने ही दया भी होगी। इस बाई को अपने पास बुलाई करने वाली का सो कितनी भलाई कर रही है।'

बाइसाह ने महाबाहिरणी बाई की बात मान कर कुछ जमा-जम दे दिया। कुछ ही दिनों पर इस गदना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जीवन एक दम बदल गया।

भारतीय यह है कि आशा एक बड़ा गुण है। जितने होंगे, उतने ही सब काम चलेंगे।

यह परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग बताया है। इसे ध्यान से निश्चिन्त आकाश व्यापक होना।



प्रभु-प्रार्थना का प्रयोजन

[क]

आदोशर स्वामी हो ।

भगवान् स्वयम्भूत को यह प्रार्थना है। देवता चाहिए कि इन प्रार्थना वही करने हैं।

प्रार्थना वही करत है। प्रार्थना किन्हीं प्रकार की अभिलाषा होना
है वह अभिलाषा किन्हीं किन्हीं चीजों को प्राप्त करने की हो
सकती है। प्रार्थना के अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि प्रार्थना
है वह अभिलाषा जो कि किसी भी व्यक्ति के हितों के लिए हो।

...

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

Journal of Management Studies, 19(6), 701-718.

... ..

घन की ही तरह कई लोग पुत्र-सम्बन्धी चिन्ता नारा करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। विशेषतः स्त्रियों को पुत्र-लाभ की झलसा इतनी प्रयत्न होती है कि अनेक स्त्रियाँ ताजियों के लोहे की रोटी खाने को तैयार होजाती हैं और भैरव-भवानी आदि पूजती फिरती हैं। यह समझती हैं—भवानीजी पुत्र दे देती हैं। लेकिन भैरव-भवानी पुत्र दे देते हैं, ईश्वर भी पुत्र दे देता है और ताजिया भी; तो ईश्वर भवानी—भैरव और ताजिया के समान हो ठहरा !

कबोरिपन में घेटा नहीं मांगा जाता। विवाह के परवाना ही यह झलसा पूरी करने की चाह होती है। मतलब यह है कि विवाह होने पर स्त्री से गरज न सरी तब परमात्मा का सहारा लिया। अर्थात् परमात्मा को स्त्री से कुछ कहा माना। क्या यही त्रिलोकी नाथ को समझना कहना है ?

कई लोग परमात्मा की प्रार्थना शारीरिक रोग मिटाने के लिए किया करते हैं। घनही समझ में भगवान् कोइ हावटर या वैद्य। जो कार्य एक मायावत् वैद्य से भी हो सकता है, उसके लिए तुम परमात्मा से प्रार्थना करते हो तो परमात्मा की महिमा नहीं समझते।

दुनियाँ की सभी चीजें मूल्य वाली हैं और परमात्मा अनमोल है। अनमोल परमात्मा में तुच्छ मूल्य की चीजों का वाचना करना क्या परमात्मा का अपमान करना नहीं है ? क्या यह उसके त्रिलोकी नाथ को समझना है ?

तुम गृहस्थ हो, तुम्हें कैसे की, पुत्र की और धन आदि सभी व्यापारिक वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। लेकिन इन्हीं सब के लिए ईश्वर की प्रार्थना करना ईश्वर को पहचानना है। तुम उस बुद्धिवादी तरह, परमात्मा से एक ही बात क्यों नहीं माँग लेते, जिसमें इन सब के समावेश के साथ और भी बहुत-सी बातों का समावेश हो जाता है ? ऐसी क्या चीज है ? इसके लिए कहा गया है—

“मेरे काटो पुराकृत पाप” ।

जब परमात्मा से पूर्वोपार्जित पापों के नाश की याचना कर लो तो और क्या याचना करना शेष रहा ? पाप ही सुख में बाधक है। वह न रहेगा तो सभी सुख बिना मुलाये आएंगे ।

गाड़ी चलने पर आप ही मालूम हो जाता है कि रास्ता मजबूत है या नहीं ? गाड़ी बेरोक चली जाय तो समझा जाता है रास्ता मजबूत है, अगर कहीं रुकावट आ गई तो यह मान लिया जाता है कि रास्ते में गड़बड़ी है। इसी प्रकार शरीर रूपी गाड़ी में आत्मा विराजमान है। आत्मा की गति में रुकावट न आए और सब काम बराबर होता रहे तो समझ लो कि पुण्य का उदय है। ऐसा न हो तो पाप का उदय समझो। आप अपनी गाड़ी को देखो, कहीं छटकती तो नहीं है ? आपके मन की सभी अभिलाषाएँ बराबर पूरी हो रही हैं ? या नहीं ?

नो गाड़ी छटकी है। रास्ता मजबूत करने का उपाय पाप कटाने है। अगर स्मरण रखना, परमात्मा की शरण लिये बिना, हम ‘नयथा उपायो मे पापों को काटने का प्रयत्न करेंगे तो पाप और बढ़ जाएगा ।



पाप जनक संयोग इष्ट होने पर भी अगर नहीं मिलते तो :
का नहीं पुण्य का उद्भव समझो । उदाहरणार्थ—तीव्रतर क्रोध
आवेश में आकर एक मनुष्य आत्म-घात करने के अभिप्राय से
या विष खोजता है । उसे शस्त्र या विष मिल जाना पुण्य है
मिलना पुण्य है ?

‘न मिलना !’

क्रोध की आग के समान ही काम की आग भी प्रबुद्ध होती।
काम की आग संतप्त होकर ही पुरुष बेरया आदि की अभिधा
करता है । अगर उसे बसकी प्राप्ति नहीं होती तो वह पुण्य के का
या पाप के कारण ?

‘पुण्य के कारण !’

अब विचार कर देखो कि परमात्मा को किधर बुलाना पता
हो ? बेरया आदि न मिलने के लिए भगवान् को बुलाना है या नि
के उद्देश्य से ?

क्रोध से पागल द्रुप को आत्म हत्या के लिए शस्त्र न मिल
पुण्य का प्रताप है । इसी प्रकार काम वासना का जागना
व्यभिचार की भावना होना भी आत्म हत्या से कम पाप नहीं
काम वासना को पूर्ण का साधन न मिलना भी पुण्य ही सम
आर्धना में कहा है—

‘मृदारा काटो पुराहृत पाप ।’

भगवान् ! तेरी कृपा द्रुप बिना पाप की वासना नहीं मिटती।
अगर मन में से काम वासना खली जाए, यही तुझमें चाहता हूँ ।

शाली नहीं हैं। यद्यपि यह ठीक है कि आत्मा इन सभी में जो सामर्थ्यवान् है, तथापि वह इन सब के चक्रुल में कमजोर आपको निर्बल अनुभव करता है। उसकी शक्ति कुटिल है। जब यह पाप की ओर प्रवृत्त हो जाता है। पाप में प्रवृत्ति होने तक मात्र उत्तम उपाय यह है कि परमात्मा में उन पापों के प्रभु जाने के लिए प्रार्थना की जाय। ऐसा करने से पापों से बसे इच्छा और शक्ति उत्पन्न हो जायगी। पतिव्रता के वेष में दुष्ट का मेहनत युग है।

आपको विचार करना चाहिए कि पापों पुरुष पाप शक्ति लिए मते ही ईश्वर का स्मरण और ध्यान करे, मगर ईश्वर बर्दाने के लिए नहीं है। कभी विधरा होकर असत्य या पाप आश्रय भी लेता पड़े, तब भी उसे सुरा तो मानो। कम से कम की सकलता के लिए ईश्वर की मद्दायता तो न चाओ। काम में मद-मोह आदि विकारों को दूर करने के लिए ही परमात्मा प्रार्थना करो। परमात्मा में कहो—“प्रभो! मुझे अपने आत्म विकार दूर करने की चिन्ता लग रही है। तू मेरो यह चिन्ता कर दे।”

मोह के प्रभाव में छोटी चीज भी बड़ी दीखने लगती है। बड़ी चीज भी छोटी दिखाई देने लगती है। कहावत है—देख इच्छा और अयना नहीं मो अच्छा नहीं। हम यह रूपवार हमारा चेता बड़ा गुणवान्! मूढ़ चन्दर जैसा ही क्यों नहीं। काव में देखकर कीन प्रमत्त नहीं होता? चन्दर भा काव में देख कर प्रमत्त होता है। यह मोह नहीं मो क्या है? मोह के

उमके मित्र ने पूछा—क्यों, फूल उठाये नहीं ? उसने उत्तर दिया—
नहीं, वह अपने काम के नहीं । वे तो हंगा देवी पर चढ़े हुए हैं ।
इस प्रकार अपनी बात छिपाने के लिए उसने अशुचिको हंगा देवी
बना दिया ।

इस दृष्टान्त में मोह के सिवा और क्या है ? ऊपरी मौन्दर्प
देखकर लुभा जाना और भीतर की असमन्वित पर विचार न करना
ही तो मोह है । हाथ लगाने वाले को पहने ही मान्म हो जाता कि
यह अशुचि है, गुब्बदस्ता नहीं होता तो क्या वह हाथ लगाता ?

‘नहीं !’

अगर वह ज्ञान मूक कर ऐसा करता तो मूर्ख गिना जाना
‘मगर संसार के लोग जानने-सूझने भी ऐसा ही करते हैं ।

मंज-मूतर की कोपली रे अशुचि नखो मंझार ।

ऊपर से कमला लगी रे ता ऊपर मितार ।

हंगा देवी समझिया सो तुम देखो ह्रदय विचार जी ॥

आप लोग हंगा देवी की अशुचि को देखते हैं, लेकिन वह
अशुचि और कहीं से नहीं आई थी, मनुष्य शरीर की ही थी । ऐसे
शरीर के प्रति इतना मोह ! इस शरीर के स्वामि लोग आत्मा को भा
भूल जाते हैं और परमात्मा से भी इसी के हेतु प्रार्थना करते हैं ?

भक्त जन कहते हैं—‘प्रभो ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए । मैं
अपने पुराने पापों को काटना चाहता हूँ । मैं निर्पाप बन गया ।
त्रिभुवन की सम्पदा से क्या प्रयोजन है ?’

यही प्रभु की प्रार्थना का प्रयोजन है। आत्मशुद्धि के लिए नित की चंचलता के कारण उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों को दूर करने के लिए और आत्मा का बल-वीर्य बढ़ाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। निष्काम भक्ति सर्वोपरि मानी गई है। मगर जब तक पूर्ण निष्काम दशा प्राप्ति नहीं होती तब तक भी कम से कम सांसारिक वासनाओं की पूर्ति और उसके साधन माँगने के लिए तो परमात्मा की प्रार्थना करना उचित नहीं है। आत्मा की शुद्धि ही जीवन का भेद्युक्त उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा का बल पाने के हेतु उसकी प्रार्थना करोगे तो आपका कल्याण होगा।

तल्लाश करते फिरते हैं । धर्म का मार्ग धीरों का है और लोगों में कायरता आ गई है । कायर लोग धीरों के धर्म को कैसे अपना सकते हैं ? मिहनत न करके मजे करने का मनोरथ रखना धीरों का काम नहीं है; और जब तक धीरता न होगी, ईश्वर का स्वरूप भी नजर नहीं आएगा ।

‘जब भगवान् ही दुःख का नाश कर देता है—दुःख निकलता है—तो हमें क्या करना है ? हम उद्योग करने की सटपट में क्यों पड़ें ? सूर्य हो तो दीपक जलाने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहने वाले, पर प्रमादशील व्यक्ति दुःखों से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं ?

परमात्मा से सभी अपना-अपना दुःख दूर कराना चाहते हैं, प्रार्थना भी इसी लिए करते हैं, लेकिन जब तक यह न जान लिया जाय कि दुःख क्या है और किन दुःखों का नाश करने के लिए प्रार्थना में परमात्मा से कहा गया है, तब तक काम नहीं चल सकता ।

सूर्य जो प्रकाश करता ही है, मगर प्रकाश को ग्रहण करने के लिए आपको आँखें खोलने की आवश्यकता है या नहीं ? क्याचिन्त कहने लगोगे—सूर्य प्रकाश करने वाला है ही, फिर हमें आँखें खोलने की क्या आवश्यकता है ? वह हमारे आँखें न खोलने पर भी हमारे लिए प्रकाश क्यों न करे ? यह स्थान बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं है ।

ईश्वर दुःख नाश करता है, हम स्वयं में भी यही बात समझ लेना चाहें । ईश्वर अपना काम करता है, आप अपना काम करें । सूर्य प्रकाश करता है मगर हम भी अपना आँखें खोलें । कहते हैं,

कदाचित् सूर्य का प्रकाश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर सकना होता; सूर्य के प्रकाश से अन्तरात्मा के पाप धुल जाते होते, तो संसार में चोरी-जारी न रहती, पुलिस और कचहरियां भी न रहती और न मतसंग या धर्मोपदेश की आवश्यकता हो रहती। लेकिन सूर्य में यह काम न हो सका। धूर्त मन को, बेवकूफ इन्द्रियों को और मिथ्याचारिणी बुद्धि को नियंत्रित करके इन पर विजय पाने का काम सूर्य में नहीं हुआ। नभो परमात्मा ने प्रार्थना करने की आवश्यकता हुई कि—‘हे प्रभो ! यह काम तेरे भिवा और फोई नहीं कर सकना।’

भक्त कहते हैं—‘प्रभो ! मेरा हृदय हो वह भूमिका है, जिस पर दुःख का विकराल विषवृक्ष उगता, झड़ुरित होता और फूलना फलता है। मगर मैंने अभी तक यह भी न जान पाया था। ज्ञान का अभिमान तो मुझे बहुत था, मगर अपने हृदय का हान भी मुझे मालूम नहीं था। मैं बाहर के पदार्थों में ही दुःख देखा करता था, मगर तेरा दर्शन पाकर मुझे निश्चय हो गया है कि दुःख का बीज मेरे अन्तःकरण में है—बाहर नहीं।’

मित्रो ! क्या अन्तरात्मा के विकारों का नाश करना अपना कर्त्तव्य नहीं है? आप गृहस्थ हैं, इमलिए गृहस्थी के दुःख से पबराकर भी शान्ति चाहते हैं, लेकिन बाह्य शान्ति न चाइकर आन्तरिक शान्ति चाहो। आन्तरिक शान्ति हो अमली, परिपूर्ण और शाश्वत शान्ति है। आन्तरिक शान्ति प्राप्त होने पर मनुष्य की सकल काम-नाई सफल हो जाता है, त्रिभोक का मन्दरा रामी बन जाती है।

बाह्य विभूति, श्रेष्ठ मित्र सम्पदा कुटुम्ब-परिवार आदि शान्ति और मन्त्र च मान ज्ञान वाले साधन पारमार्थिक शान्ति नहीं

शान्ति से बैठने वाला, न माँगने पर भी भूखा नहीं रहता, तो क्या ईश्वर के घरणों में बैठ कर भूखे रहोगे ? संनोष रख कर कल्याण-कामना करोगे तो अवश्य कल्याण होगा । गीता में कहा है—

‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।’

मनुष्य को कर्त्तव्य करने का अधिकार है, फल माँगने का अधिकार नहीं है । कर्त्तव्य करो और फल की चाह से बचो, तो सब शान्ति मिलेगी ।

ससार के अन्यान्य व्यापारों की तरह धर्मभी व्यापार बन गया है । लोग चाहते हैं—इधर धर्म करें और उधर तत्काल फल मिल जाय । उधार धर्म किस काम का ? ऐसे ही एक कवि ने कहा है—

मने रोटला आपो राम, जदि भजूँ तमारो नाम ।

चार अघेरी चार सघेरी चार दोपहरी बारा ॥

एटला माही चूक पड़े तो मेलो बारो माजा ॥

छाड़दो तीरय राबदो तीरय तीरय घुगरी यांकरा ।

बिचले बिचले रोटलो तीरय बहो तीरय अंगा कदा ॥

इस प्रकार की सुद्र भावनाओं के साथ की हुई प्रार्थना सार्थक नहीं होती । प्रार्थना का प्रयोजन महान् है, उच्च है, वज्रवत् है । मानव-जीवन के चरम साध्य साधन मुक्ति के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए । जो इस निर्मल और निर्विकार भाव में प्रभु ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, ममत्त कल्याण उन्हें सौजते हुए आते हैं ।

परमात्मा की महिमा इतनी अधिक है, कि प्रत्येक ईश्वर प्रेमी उपाय मासुत्कार करना चाहता है, कभी-कभी भक्त जनों के हृदय में

में अन्तर रहता है या नहीं ? मूर्ख मनुष्य केवल दीम्बने वाली मौजूदा चीज को ही देखता है और बिद्वान् पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमान सभी को जानता है। सात भोयों के भीतर बैठा हुआ भी ज्योतिषी चन्द्र-सूर्य-ग्रहण का जो समय बतला देता है, उसी समय ग्रहण होता है। उसने ग्रहण को चर्म-चक्षुओं में नहीं देखा बरन् विशाध्ययन में हृदय के जो नेत्र खुल गये हैं, उनमें देखा है। इन नेत्रों का जब अधिक विकास होता है—साधना के द्वारा आत्मज्ञान हो जाता है तब परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

‘मा विद्या या विमुक्तये’ अर्थात् जिन विद्या से सब प्रकार के बन्धन कट जाते हैं, वही सच्ची विद्या है। इस विद्या की तरफ ध्यान दिया जाय तो घाटीक में घाटीक चीज भी दिखाई देने लगेगी। आत्मा के सब आवरण हट जाएंगे। बन्धन कट जाएंगे। आत्मा पूर्ण और मुक्त हो जायगा। हम स्थिति में स्वतः भग्न होने लगेगा कि—‘यः परमात्मा मयाहं।’ अर्थात् मैं ही परमात्मा हूँ।

आत्मा में ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोड़ी भूल हो रही है। भूल यही कि जिन ओर मुँह करना चाहिए, उस ओर मुँह न करके विपरीत दिशा में चर गयी है।

एक सूर्य पृथ्वी में उदित हुआ है। एक व्याक्त पञ्चमक ओर उदित करके खड़ा है। उनका परछाई पश्चिम में पड़ रहा है। अपना परछाई देखकर वह व्याक्त उस पकड़ने दौड़ता है। ज्या-ज्या व

है कि तृष्णा कभी नहीं मिटेगी। परन्तु आत्मा एवं परमात्मा दृष्टि दोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौड़ेगी, जिस प्रकार की ओर दौड़ने से परछाई पीछे-पीछे दौड़ती है। माया के पीछे गने से तृष्णा कभी नहीं मिटती। इसके लिए एक उदाहरण जिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने कहा—‘मनुष्य शरीर सुलभ नहीं है। धर्म किया करो। धर्म का पालन न किया तो शरीर किम काम का आगत मनुष्य ने कहा—‘हाराज। घर में तो बाल-पच्चे हैं। उनका पालन-पोषण करना पड़ता है। संसार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। रोज़ दिन दौड़ धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता है। कहीं इ आजीविका का प्रबंध हो जाय—घर का काम चलने लगे तो ध्यान करूँ ?

महात्मा ने पूछा—‘तुम्हें प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो भगवान् का भजन किया करेगा ?

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा—‘ऐसा हो जाय तो कहना क्या है ? फिर तो मैं ऐसा भजन करूँ कि ईश्वर और मैं एक-मेक हो जाऊँ !’

महात्मा ने उसका हाथ ले एक का छंक उस पर लिख दिया। उसे किसी भी प्रकार प्रतिदिन एक रुपया मिल जाता था। एक रुपया

काम खूब बढ़ा लिया। कहीं कोई दुकान, कहीं कोई कारखाना चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसे सनिक भी कुर्मत न मिलती। स्त्री कहने लगी—घर में अच्छे दिन आये हैं तो मेरी भी कुछ सुध लगे या नहीं? स्त्री के ऐसे आप्रद मे उसके लिए भी साभूपण बनने लगे। उसके रदन-मदन का पैमाना (Standard) भी ऊँचा हो गया। विवाह-सगाई भी ऊँची हैसियत के अनुसार हो होने लगी।

कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले। बोले आज कल मुझे दस रुपया रोज मिलते हैं, अब क्या करता है? अब भी नू भजन नहीं करता !'

उसने उत्तर दिया—'दीनदयाल ! खूब स्मरण दिलाया आपने आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है मैं उसका दुरु-पयोग नहीं करता। आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता नहीं ! संसार में बैठे हैं। गृहस्थी का भार सिर पर है। इज्जत के माफिक ही सध काम करने पड़ते हैं।'

महात्मा बोले—'मैंने दस रुपये रोज का प्रयंच बढ़ाने के लिए दिये थे या घटाने के लिए ?'

उसने कहा—'करुणानिधान ! गृहस्थी में प्रयंच के सिवाय और क्या चारा है ? प्रयंच न करें तो काम कैसे चले ?'

महात्मा—'फिर नू क्या चाहता है ?'

बड़ बोला—‘आपकी दया । आपकी दया हो आव सो । इस
आमरनी बड़ आव तो जीवन मारल हो ।’

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बड़ा कर भी दाव
देज कर दिव । अब वसे प्रतिदिन सौ, महीने में तीन हजार और वं
भर में छत्तीस हजार करने मिलने लगे । इनकी आमरनी होने है
वसका काम भंग और बड़ गया । मोटर बघी और तांगे चौदने को
बहने कदाचित् आवश्यकता मिलने की ओ सभाबना भी बड़ भी ब
जाती रही, बड़ इनकी बलमनों में पैस गया कि वसे महात्मा को वं
दिखलाना भी बटिन हो गया ।

आत्र के जीवन भी आत्मव्यवस्था में दिनना समय व्यतीत
करने हैं । बड़ समझते हैं मानों हमारी मूर्ति ही अभाग है । गरी
कोर कमीनों की वो मित्र मित्र मूर्तियाँ हैं ।



प्रार्थना

भी महावीर नमूँ बर नाली :

यह भगवान् महावीर की प्रार्थना है। प्रार्थना आत्मा की आनन्ददयिनी वस्तु है। प्रत्येक प्राणी और विरोधः मनुष्य को प्रार्थनामय जीवन बनाना आवश्यक है। त्यागीवर्ग पानी साधु-संतों को ही नहीं, किन्तु पतित में पतित जीवन बिताने वालों को भी परमात्मा की प्रार्थना करके जीवन को पवित्र और पवित्रतर बनाने का अविहार है। संसार में जिसे पानी कड़ कर लोग धुलित नमनते हों, ऐसे घोर पानी, गौ, ब्राह्मण, स्त्री और बालक के धावक, घोर, लवारी, जुमारी और बेरयागामी अथवा पतित, दुराचारिणी और दुष्कर्म करने करने वाली स्त्री को भी परमात्मा की प्रार्थना का अंगार है।



परमात्मा व्यापक है ।

॥ श्री आदेश्वर स्वामी हो, प्रणमंतिर नानी तुम भली ।

यह भगवान् स्वयम्भूत की प्रार्थना है। प्रार्थना मेरा जित्त का विषय है। जगत् एक प्रार्थना करने का कार्य भी बहुत बड़-बड़म मेला तक पहुँचा दिया जाय तो एकदि मध्ये सब मध्ये की कृपावत् के अनुसार मनुष्य के मन्त्र जगत् के मन्त्र हो सकते हैं।

प्रयोगों में विचारों को जोड़ते हैं और वे इस प्रयोगों में प्रयोगों
 करने के लिए इस प्रयोग में बहुत कुछ करना है। प्रयोगों में प्रयोगों
 के प्रयोगों और प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों में प्रयोगों के प्रयोगों
 प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों
 प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों
 प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों
 प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों
 प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों के प्रयोगों

करके आप हमें अपना शिष्य बनाइये।
गुरु को शिष्य

गुरु को शिष्य का लोभ नहीं था। अतएव उसने कहा—आप जो चेला बनना सरल मालूम होता है पर मुझे गुरु बनना कठिन जान पड़ता है। इसलिए पहले परोक्षा कर लूँगा।

आप लोग रुपये बजा-बजा कर लेते हैं और यहिनें हंडियाँ पड़ता है और उपालम्भ सहना पड़ता है। इसी प्रकार चले सराय बनानी भी सराय निकला, परन्तु पहले जाँच पड़ताल कर लेना ऐसा निवारण है।

ऐसा विचार कर गुरु ने उन दोनों में कहा—‘पहले परीक्षा
रहूँगा, फिर शिष्य बनाऊँगा।’
शिष्य—जी, जी है।

गुरु ने फोहरी में —

गुरु ने कोठरी में जाकर एक मायामय कवच बनाया और
 उसे जहाँ कोई देखता न हो ।

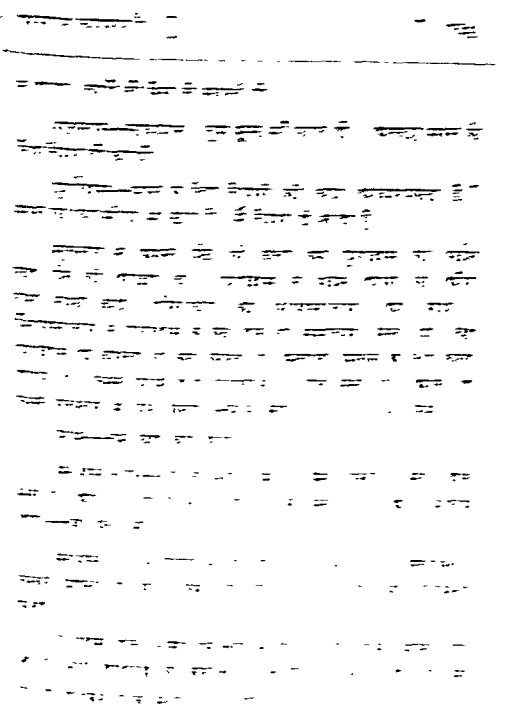
पड़ले चेने ने कटुतर हाथ में लिया और बोला—“यह कौन
काम है, ऐसी जगह बहने हैं, जहाँ एकदम है—होठें देखता
और मारना नो करने, दो दो मोड़ जो, न। मारना है, मारना
चकर वह कयना है।

चिक्कर वह कयनर को म... या... रि... म... रमने
या बोला—'... म... व... व... र...
नहीं' ...

देने वाला कौन है ?' दुर्गादास ने दृढ़ता के स्वर में कहा—'मैं, दुर्गादास हूँ और अपने जीते जो इसकी रक्षा करूँगा।' संभाजी कुछ ढोले पड़े। बोले—'तुम उसे मेरे सिपुर्दे कर दो।' दुर्गादास बोले—'महाराज, यह अनभव है। मैं शरणागत का त्याग नहीं कर सकता।' संभाजी कामान्वय था और अन्न आन का भी कुछ खयाल हो आया। वह लड़ने पर तैयार हो गया और बोला—'अच्छा, अपनी तलवार हाथ में लो।' दुर्गादास ने अविचलित स्वर में कहा—'आपको इतना होश है कि निरस्त्र पर अस्त्र नहीं चलाते पर इस अन्न के पास कौन-सा शस्त्र था कि आप उससे लड़ने चले हैं ?'

दुर्गादास ने संभाजी की तलवार दीज ली, इतने में उसके बहुत से साथी आ गये और संभाजी की आज्ञा से उन्होंने दुर्गादास को पकड़ लिया। यद्यपि दुर्गादास अकेले ही उन भय के लिए काफ़ी थे, मगर उन्होंने दस्तेड़ा करना उचित नहीं समझा। कहते हैं—तब तक वह नवयुवकी अपने ठिकाने पहुँच भी चुकी थी।

संभाजी के नाम और गुरुदेव का 'क जाम्बू किदमंदा' रहना था वह उसे सारा और सरदारों में बाँट दिया। कम था उनसे संभाजी ने दुर्गादास को मांग लिया, उसे जो वे 'परमात्मा' के समकक्ष सिपुर्दे कर 'देय' समझ कर उसे कल बेचारा था। 'परमात्मा' के सामने देना कर 'देय' और कहा—'आप 'परमात्मा' के समकक्ष होने चाहते थे वह दुर्गादास कैद हो गया है। उसे पकड़ आया है।' और गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए। और गुरुदेव ने कहा—'परमात्मा, बन्धुगृह में इसे रख दो। कल बेचारा कर दो'।



न होगा। आदो तो गिर से गकती हो।

गुलनार—साधधान ! तुम मुझे मों बढने हो ! अण्ण मरने के लिए नैयार हो जाओ।

दुर्गादाम—मरने के लिए नैयारी की क्या आवश्यकता है ? मरने का यह मौका भी ठीक है। मैं तैयार ही खड़ा हूँ।

गुलनार ने अपने घेठे को चुला कर दुर्गादाम की गर्दन घड़ा देने की जाशा दी। दुर्गादाम ने गर्दन आगे की और उसी समय यहाँ थौरंगजेय का सिपहसालार आ गया। सिपहसालार ने दुर्गादाम के पैर होने का समाचार सुना था। यह दुर्गादाम की योगता की कट्ट करता था, अतएव मिलने के लिए चला आया था। उसने बेगम और दुर्गादाम की बात सुनी थी। आते ही उसने गुलनार से प्रश्न किया—बेगम साहिबा ! आप यहाँ कैसे ?

बेगम—तुम यहाँ क्यों आये ?

सिपहसालार—यह तो मेरा काम है। मैंने तुम्हारी सय बातें सुनी हैं। अब तक दुर्गादाम की बीर ही समझता था, अब मालूम हुआ—वह बली भी है।

सिपहसालार ने दुर्गादाम को कारागार से बाहर निकाला। उसकी प्रशंसा की और उसे जोधपुर खाना करने की व्यवस्था कर दी।

दुर्गादाम बोले—सिपहसालार साहब ! आप मुझे मुक्त कर रहे हैं, मगर बादशाह का खयाल कर लीजिए। ऐसा न हो कि मेरे कारण आपकी दुःख सहन करना पड़े।

न होगा। जागे जो फिर से मरने हो।

सुम्नार—मन्त्रधाम ! तुम मुझे भी बताने हो ! अन्त्या मरने के
फिर तैयार हो जाओ।

दुर्गाशम—मरने के दिन मैं जानूँ की क्या आवश्यकता है ?
मरने का यह मौका भी ठीक है। मैं तैयार हो खड़ा हूँ।

सुम्नार ने अपने पैरों को धुसा कर दुर्गाशम की गर्दन
पक़ा देने की कोशिश की। दुर्गाशम ने गर्दन काग़े की छोर
उसी समय वहाँ सौरभदेव का निरन्तराचार आ गया।
निरन्तराचार ने दुर्गाशम के पैर होने का मनोवाचक मुद्रा था। वह
दुर्गाशम की योगता की कद्र करता था, अतएव नितने के भिन्न चला
फला था। उसने देवम और दुर्गाशम की बात सुनी थी। आगे ही
उसने सुम्नार से प्रश्न किया—देवम सखिया ! काय यहाँ कैसा ?

देवम—तुम यहाँ क्यों आये ?

निरन्तराचार—यह ठीक मेरा काम है। मैंने तुम्हारी सपना बातें
सुनी हैं। कब तक दुर्गाशम की योग ही नगमना था, अब मातुल
हुआ—वह बली भी है।

निरन्तराचार ने दुर्गाशम की करामात से बाहर निकाला।
उसको प्रशंसा की और उसे जोषपुर खाना करने की व्यवस्था
कराई।

दुर्गाशम बोले—निरन्तराचार साहब ! काय मुझे सुम्नार कर
गये हैं, अगर बादशाह का सम्मान कर लीजिए। ऐसा न हो कि मेरे
काय काटके द्वारा सहन करना पड़े।

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

ਸਾਹਿਬ ਜੀ ਦੇ ਨਾਮ 'ਤੇ

दुर्गादाम कारागार में बन्द कर दिया गया। औरतों के भी भगम गुप्तनार ने षड्युपूर की लड़ाई में दुर्गादाम को बेगम बागमकी नेत्रमिवता और धीरसा देस बेगम उम पर मोड़ित हो गई थी। बेगम को जब दुर्गादाम के कैद होने का समाचार मिला, तो उसमें अपनी बहुत दिनों का मनोरम पूर्ण होने का आशा हुई। उसे सुनादगाद के पास जाकर कहा—'तहाँपनाइ' कैरी दुर्गादाम के बारे में हवाले कर दीजिए। उमका फैसला मैं करना चाहती हूँ। मैं तो गाँजिव समझूँगी, वही सजा हम देदूँगी।'

बादशाह उमकी बात टाल नहीं सका। गुप्तनार की प्रमत्तता पर न रहा। बेगम रात्रि के समय अपने लड़के को लेकर गई, जहाँ दुर्गादाम कैद था। लड़के को बाहर लड़ा रस कर दुर्गादाम को न गये। उमने हावभाव दिखाने हुए दुर्गादाम से कहा—'आप बहुत दिनों बाद मन की मुगद पूरी हुई। अब आप मुझे भी काम कीजिए। अगर आपने मुझे स्वीकार कर लिया तो मैं बादशाह को पालोके भेंट कर आपको दिल्ली का बादशाह कर दूँगी। अगर आपने मेरी बात न मानी तो अभी मर्दन उदर दी जावेगा' कहकर लगी लज्जाम तबे बाहर गया है।'

उमने उमर में देखते तो मायूस होता कि धर्म का पालन कर रहा कि दुर्गादाम के हाथों पैरों में हथकड़ी-बैठे हैं वही और है बागम कहता। मायूस बात वहीं समाप्त नहीं होती। उम को अपने मन में कि धर्म के पालन में किस प्रकार गया होती है।

दुर्गादाम ने गुप्तनार से कहा—'हाँ, तुम मेरी माँ हो। मैं कोर के इ कामों में, उनका मैं पालन करेगा। पर यह काम मुझे



यह पंच नमस्कार मंत्र समस्त पापों का विनाश करने वाला और सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है ।

मंत्रों में कितनी शक्ति होती है, यह यान तो मंत्रवेत्ता ही जानता है । आचार्यों ने कहा है—'अचिन्त्यो हि मणिमयौषधीर्ना प्रमदं अर्थात् रत्नों मंत्रों का तथा औषधियों का प्रभाव इतना अधिक है कि वह विचार में बाहर है । जब साधारण मंत्रों का प्रभाव भी अचिन्तनीय है तो नमस्कार मंत्र जैसे महामंत्र के और सर्वोत्तम मंत्रों के प्रकट पभाव का मन के द्वारा किम प्रकार चिन्तन किया जा सकता है ? इस मंत्र में अपूर्व आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त होती है । संसार के अन्यान्य मंत्र इसी लोक में किंचित् लाभ पहुँचाते हैं, पर नमस्कार मंत्र इस भव और परभव दोनों में लाभ कारक है । यह सब आत्मा के काम, क्रोध आदि आत्मिक विषय का नाशक है और स्वाभाविक गुण रूप अनन्त सम्पत्ति का दाता है । इसके प्रभाव में आत्मा समस्त विकारों से विहीन बनता है । इस मंत्र की मूर्ति से मनुष्य को तो बात दूसरी, पशु भी देवत्व प्राप्त करता है ।

नमोकार मंत्र का पहला पद 'नमो अहिंसाय' है । महापुरुषों ने जैन धर्म का स्वरूप व्यापक बतलाया है । जैनधर्म किसी एक जाति, समाज या व्यक्ति का धर्म नहीं है जो इसे धारण करना है, उसे का यह धर्म है । इसके सभी निदान्त बहुत व्यापक, उपकारक और कल्याणकारक हैं । जो इस धर्म का पालन करे, वही जैन या जैन-वर्मानुयायी है । प्रकृत नमस्कार मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है । इसमें गुण पूजा का आदर्श पतलाया गया है । महावीर, पार्श्वनाथ आदि नाम बाद में हैं, पहले तो असब में आश्रित-मार्ग है । यह नाम उन महापुरुषों के हैं, जिन्होंने जैनधर्म

अनुसरण करके अपनी आत्मिक दशा परम उत्तमि पर पहुँचाई । 'अरिहंत' कोई नाम विशेष नहीं है, बड़ तो आध्यात्मिक विकास की उत्कृष्ट अवस्था का परिचायक मुख्यवाचक शब्द है । आत्मा के गन्धर्व रूपों में जो जो रूप कर देता है और जो सर्वज्ञता और वैश्वसिद्धि प्राप्त कर लेता है, वही अरिहंत है । ऐसे अरिहंत भगवंत से हो पहले पद में समन किया गया है । जिसने ऐसी उत्तम अवस्था तक का ली है, उसका नाम चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, महेश हो, बुद्ध हो, चाहे जेने इन्द्र, जनेन्द्र आदि कुछ भी कहा जाय । जैन को नाम में कोई प्रयोजन नहीं, बड़ सुखों की मानवा और पूजना है । अनेक लोगकों ने इस भाव को अपनी मूर्तियों में शरट रूप में प्रकट भी कर दिया है । प्रसिद्ध तार्किक अकलकदेव कहते हैं—

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजल निधेर्माङ्गिनः पारस्वरा,
पौर्वाभ्याविहृतं वचनमनुपम निष्कलं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुभ्यो नक्तसमुपनिधि ध्वत्वशेषद्विपन्तं,
हुतं वा बर्हमानं शवदलनित्यं केरवं वा शिव वा ॥

अर्थात्—जो समस्त ज्ञेय पदार्थों के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ है, जिसके वचनों में पूर्वापर विरोध नहीं है और निर्वोध है, जो समस्त आत्मिक सुखों की निधि इन गया है, जिसने राग-द्वेष आदि दोषों को ध्वंस कर दिया है—वैतराग है, उसका नाम चाहे कुछ भी हो—हुत हो, बर्हमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो—वही साधु पुरुषों द्वारा वन्दनीय है । उसे मैं वन्दन करता हूँ ।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽस्ती सोऽयमभिधेया यथा तथा ।



अन्तरतर की प्रार्थना

श्रीमुनिमुक्ता सायबा !

भगवान् मुनिमुक्तानाथ की यह प्रार्थना है। देखना चाहते हैं कि अपने सबों को भगवान् के समस्त प्रार्थना द्वारा किस निवेदन करने हैं ? इस विषय को लेकर जितना भी विचार लायगा, उतना ही अधिक आनन्द अनुभव होगा। आत्मा वस्तु जितने अधिक समीप होगी, उममें जितना ही अधिक क मिलेगा। समुद्र की शीतल तरंगों प्रत्यक्ष क चोंच लाप में लगे हुए जगन्निदायक मादम होनी हैं तो अधिक सप्रसन्न होने पर ही अधिक शक्ति पट्टेवाली है। पुण्य का मोरभ अकट्टा लगता है। कृत्त जब अधिक नजदीक होता है तो उसकी सुगन्ध और आनन्द देने वाली होती है। इस लौकिक उदाहरणों में ही समीपानि समर्थ ज मचनी है कि परमात्मा की प्रार्थना



यन्त्रगत की प्रार्थना

11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1041 1042 1043 1044 10

[illegible]

मंडा-फोड़ होता है, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये। दोनों ने धनोक्त के लिए यथाशक्य उद्योग किया। पर उनमें से एक को अन्धता हुआ और दूसरे को लाभ नहीं हुआ। जिसे लाभ नहीं हुआ। उसने सोचा—उद्योग करते-करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ न हुआ। अन्य देश को लौट जाना ही श्रेयस्कर है। उसने अपना विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया। मित्र ने सोचा—यहाँ काफी आमद हुई है और व्यापार में इतना उलझा हुआ हूँ कि मैं नहीं जा सकता। लेकिन कुछ रकम अपने मित्र के साथ क्यों न ले दूँ, जिससे स्त्री को संतोष हो जाय। लेकिन यह कथन कहीं न निकरेगा? यह मोच कर उसने एक लाल खरीदा और अपने मित्र को देकर कहा—भाई, जाते हो तो जाओ और यह लाल आप माँगी को दे देना। कह देना कि यह लाज कीमती है। इसे मर्याद कर रखो। कुछ दिनों बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊँगा। लाल पहुँचने से तुम्हारी माँगी को संतोष होगा।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ। रास्ते में उसके मन में घेड़मानी आ गई। मनुष्य दुर्बलता का पुत्र है। कब कौन-सी दुर्बलता उसे विवश कर देती है, नहीं जा सकता। उसे विचार आया—लाल कीमती है और मित्र अकेले में ही मुझे दिया है। देते-लेते किसी ने देखा नहीं है—क्या गवाह साम्य नष्ट है। वन घेड़मानी किये बिना आता नहीं, यह प्रयत्न करके देव्य लिया है। इमानदारी स्वयं इतनी घेड़मान है कि इमानदारी की भूखों मरना पड़ता है ऐसी मुँहजली इमानदारी

घर घाटो ? देहतर दही है कि हाथ में आये इस लाल को हजम
कर लिया जाय । थोड़ा-सा भूठ घोलना पड़ेगा । कह दूंगा—मैंने
त दे दिया है ।

सोग मोचते हैं—पाप केवल जीव-हिंसा करने में ही है । भूठ-
कपट तो लोगों की निगाह में मानो पाप ही नहीं हैं । भूठ-कपट
बौन-सा महा-आरम्भ-समारम्भ करना पड़ना है ! लाल के लिए
कमाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा । धनोपार्जन करने
अधिक आरम्भ-समारम्भ करना पड़ेगा और थोड़ी-सी जीभ
लाने में आरम्भ-समारम्भ के दिना ही धन मिल रहा है ! फिर ऐसे
ते धन का पालन क्यों न किया जाय ? बौन पाप में पड़ कर—
आरम्भ करके धन कमाने का नम्रोट करे !

ऐसा ही कुछ मोच कर वह अपने घर पहुँचा । उसने लाल
को ही पास रख लिया मित्र की स्त्री को नहीं दिया ।

मित्र की पत्नी को उसके लौट आने का समाचार मिला । उसने
चा—वह तो अपने मित्र का कुशल-समाचार कहने आये नहीं,
पर मुझे जाकर पूछ आने में ही क्या हानि है ? वह पति के मित्र
पर पहुँची । पूछा—भाप अकेले हो क्यों आ गये ? अपने मित्र
साथ नहीं लाए ?

उसने कहा—वह दश हाँ लोभो है । उसमें कमाई का लोभ
तो ही नहीं है । खूब धन कमाया है, फिर भी नहीं आया ।

स्त्री ने पूछा—न्यूँ कमाया है तो कुछ भेजा नहीं ?

वह—एक, वह लोभो क्यों भेजा ? कुछ भी नहीं भेजा
मैंने

मनुष्य जब एक पाप करना है तो उसे क्षिपाने के लिए काँ पाप करने पड़ते हैं। कदापन है—निमका एक पैर खिमड़ जाता है वह लुडकना ही जाता है।

स्त्री मन्तोष करके बैठ गई। उसने सोचा—कुछ नहीं दिया तो न सही, कुशल पूछक है और समाई कर रहे हैं तो आखिर मैं क्या जायेंगे ? अन्त में तो घर यही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्या समेट कर घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुशल तो रहे ? आप मुझे तो एकदम ही भूल गये ! अपने मित्र के साथ कुछ भी न भेजा ?

पति ने कहा—भूल कैसे गया ? भूल जाना तो तुम्हारे लिए लाल क्यो भेजता ?

पत्नी--कौन-सा लाल ?

पति--क्यो, मित्र के साथ भेजा था न ? तुम्हें मिला नहीं बद ?

पत्नी--नहीं, लाल तो मुझे नहीं दिया। वह तो आपके साथ चार कहने के लिए भी नहीं आये। मैं खुद उनके घर गई। कुछ समाचार पूछे। उन्होंने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नहीं भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन में वैश्यानी आ गई। लाल चली ने हजम कर लिया है। प्रातः होते ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रंग पड़ गया। लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूंजा-अब्दा, आप आ गये ?

जो हों वह घर वह बैठ गया। बुलास-दुलान्त के पक्षान्
वमने हुआ—मैंने सुने जो साज दिया था, वह क्यों है? वमने
कहा—वह तो जाने हो मैंने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

दुमने ने कहा—वह तो पत्नी है, मुझे दिया ही नहीं।

प्रथम मित्र—भूटे है। मित्रों का क्या भरोसा! न जाने किसी
को दे दिया होगा और मुझे और पनाती है!

इस प्रकार वह घर वह सरजने लगा—अपनी स्त्री को तो
नेने नहीं और मुझे और, धर्ममान पनाते हो! ऐसा जानता तो मैं
क्या हो क्यों? कान्तर, जो मुझसे सब बात के विषय में कभी
होता हुआ।

मुझ आदमी चिल्लाना बहुत है। उसका रंग-रंग देखकर
काय जाने मित्र ने बोला—वह सात भी दूजन कर गया और ऊपर
मेरी पत्नी को दुसाधारिणी प्रकट करना चाहता है और मुझे
बमने दे रहा है।

कान्तर वह हाकिम के पास गया और साग किस्सा सुनाया।
हाकिम ने पूछा—तुमने हिमके सामने लात दिया था? वमने
कहा—मैंने हवल विधान पर ही दिया था। किसी को गवाह नहीं
दिया। हमारी इस न्यायोक्ति से हाकिम को उसके कथन पर
विश्वास हो गया। हाकिम ने सन्तुष्टता देते हुए कहा—मैं समझ
गया हूँ। तुम सच्चे हो। मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूँगा।
कान्तर सात न निजा तो तुम्हारे दूजन अवश्य बाधित जायगी।
तुम अपने घर जाओ।

तो लगवाते हैं ? हम लोगों ने तो क्या, हमारे बाप ने भी कभी
यत्न नहीं देखा । हम तो हमके मुत्तादिये और कुछ लोभ-लालच में
हम का गवाही देने आये हैं ।

अमत्य किन्ना यत्नहीन होता है ! मृत्यु के सामने अमत्य के
देर उमड़ने देर नहीं लगती । अस्त्य में धैर्य नहीं, साहस नहीं,
शक्ति नहीं ।

भूठे गवाहों की कड़ाई मूल गई । हाकिम ने पूछा—कहो सेठ,
इतना बड़ा लाज तुमने हमकी स्त्री को दिया था ? मेठ लज्जित था ।
लोकनिन्दा और राजदण्ड के भय से तथा जर्म में वह भारती में
गड़ा जा रहा था । वह बोलता क्या ? हमके मुख में एक भी शब्द
न निकला । हाकिम ने कहा—तुमने लाज भी चुराया और भूठे
गवाह भी तैयार किये । तुम्हारे ऊपर दहरे अपराध हैं । अथ मच
रवाहो, लाज कहाँ है ? नहीं तो गवाहों के बदले कोहो ने तुम्हारी
पूजा की जायगं

मार के आगे मृत भागना है । हम कोरे हैं । मेरे ने सौरभ
लोक दे दिया ।

हाकिम ने, बाप को, कहो, व... का... भाग...
विषय से...
बहु...
हमें...
का...
आव...

जैसे...

कोई दान नें अंदा नहीं खा सकता ।

मैलेडी अपनी दात पर डटे रहे । घोमारी की हालत में,
मैलेडी का पालन अम्बोकार करके भी उन्होंने अंदा नहीं खाया ।
मैलेडी ने घोमारी में कष्ट पाना मंजूर किया, पर धर्म से डिगना
नहीं माना । कष्ट पाये बिना धर्म का पालन होता भी तो
नहीं है ! मैलेडी ने प्रतिज्ञा न की होती और प्रतिज्ञा पर अचल
रहने की ही कौन कह सकता है कि आज वह "महात्मा गांधी"
का नाम ले कर दिखायी होते या नहीं ? मनुष्य का उस चारित्र्य का
कारण है वह भी कोई मनुष्य है ?

यह और मजली का तेल (कौड-लीवर ऑयल) जैसे घृणिन
मैलेडी ने धर्म के सत्कार नष्ट कर दिये हैं ।

मगर वास्तव्य वस्तुओं का सेवन लोग किस लिए करते हैं ?
मैलेडी के लिए ? बहुत समय तक मृत्यु से बचे रहने के लिए
मैलेडी का व्यवहार किया जाता है, मगर दुनियां किननी अंधी
है, जो उसे समझने वाले फल को भी वह नहीं देखती । ज्यों-
ज्यों वह बढ़ता जाता है, ज्यों-ज्यों रोग बढ़ने जा रहे हैं,
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन हो रहा है,
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन हो रहा है, शरीर की निर्दलता बढ़ती जाती
है, जिसका कारण है कि वह उस में जीवित रहने जा रही है,
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन है, फिर भी अंधी दुनिया को
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन हो रहा है ? नहीं । वा फिर
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन है—मनुष्य के मनुष्य न जाकर लोग
ज्यों-ज्यों वास्तव्य वस्तुओं का सेवन है—मनुष्य के मनुष्य के बीच में—क्यों

जा रहे हैं ? जीवन की लालसा से प्रेरित होकर मौत का आग्रह करने को क्यों बगन हो रहे हैं ? मित्रो ! आर्यें श्रोत्रो, फिर आर्य हैं सब कुछ समझ जानोगे ।

पर श्री तो सब के लिए माता के समान हीनी आदि। भूख कवि करने हैं.—

पर-नो मन्त्रि जे धरनी निरने,
धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ने ।

जहाँ बात बड़ी नहीं होती, वहाँ पानी नहीं रुकता और जहाँ पानी नहीं रुकता वहाँ अच्छी खेती नहीं हो सकती । मैंने कृषि के बचन आदि मुनाजर कान्देश की बर्तनी है, पर पान के अन्त में यह कान्देश भी कल्याणकारी नहीं हो सकेगा । अतएव बात को जानो कान्देश जिसमें कान्देश का पानी ठहर सके और आर्य कल्याण हो । आनन्दन जैसी देवी, समाने-माने के योग्य स्थिति स्थिति में नो नो जानो दे मगर धर्म की बर्तनी ठहर सकती है, जब धर्म स्थिति में जाय । हमारे कान्देश का पानी कान्देश के पान धर्म की स्थिति है । अतएव बात को जो पान धर्म की स्थिति अतएव मितनी कान्देश जिसमें आदिमा, माय, प्रकृति धर्म की समारण हो । विनीत पुत्र को मनों में बात आदिने है, पान्ति स्थिति में कान्देश स्थिति है, जिसमें धर्म को स्थान नहीं होता । ऐसा आर्य में कान्देश स्थिति हो सके ? मी-बा । नहीं समझने कि मी-बा स्थिति कान्देश स्थिति ? वे आर्य कान्देश और कान्देश स्थिति में स्थिति है । इस स्थिति में मी-बा स्थिति होने है तो इसमें कान्देश हो सके है ?



कहाँ से कहाँ ?

६ जीषा ! शिमल जिनेश्वर मेदिनी ।

[illegible]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

मतलब यह है कि आपने अपने दिल के मद्दत में यदि हराम को स्थान न दे रक्खा हो तो फिर किसी क्रिम का भगड़ा नहीं हो सकता । अतएव आपके दिल से उन हराम को निकालने और इन्हें को स्थान देने के लिए ही हम लोग बार-बार कहते हैं ।

अगर आप रुपये देकर स्टाम्प लाएँ और उन कोरे स्टाम्प पर कोई लड़का खाली लकीरें खींचने लगे, तो क्या आप उसे खींचने देंगे ? मित्रो ! जिन्दगी स्टाम्प से बहुत अधिक कीमती है । जिन्दगी के मफे पर खाली लकीरें खींचकर इसे खराब मत करो । इसका सदुपयोग करो । दुहूपयोग मत करो । ऐसा करने से कल्याण होगा ।



होते हुए भी रामचन्द्र प्रजा की भलाई करते हैं तो राजा होने पर क्या न करेंगे ? इसके अतिरिक्त रामचन्द्र की प्रकृति इनकी सीमा और मधुर थी कि वह सभी को प्रिय लगने से और राजा के काम से उन्हें देखने की कठिनाई से ही प्रजा आनन्दित थी ।

राम के राज्यभिषेक का सम्वाद मिलते ही उनके मित्र हर्षित होकर उन्हें बधाई देने गये । राम गम्भीर हो कुछ सोच रहे थे । मित्रगण के हर्ष का पार न था, यहाँ तक कि हर्षानिरेक से उनके मुख से शब्द ही नहीं निकलते थे । हर्ष और शोक के आविर्भाव में स्वभावतः कुछ अवरोध हो जाता है । राम के मित्रों का भी गुस्सा हर्ष के कारण रुक गया था । वे बधाई देने के लिए बोलने की चेष्टा करते थे फिर भी हर्ष के अनिरेक से बोल नहीं पाते थे ।

अपने मित्रों को इस अवस्था में देखकर अनुर-रामचन्द्रजी समझ गये । उस समय भी उनकी गम्भीर मुद्राएँ हाठ दिखाई देती थी । उन्होंने कहा—आप लोगों के चेहरे से ही यह प्रकट है कि आप हर्षमान हैं और उन हर्ष का कुछ भाग मुझे देने आये हैं । अब आप हर्ष देने आये ही हैं ना फिर इतना विज्ञान क्यों ? आप ही जीन साथे हुए हैं ।

रामचन्द्र की बात सुनकर उनके मित्रों ने बोलने की बहुत चेष्टा की, फिर भी उन्हें मायूस हुआ होने वाली नीम पर रिझने का भाव लगा दिया है । किन्तु न कुछ भी न कहा ।

तब रामचन्द्र ने उन्हें यह बात बतलाते हुए कहा—सम्पन्न और विद्वान् के समय इस प्रकार हर्ष का विधान करना बुद्धिमत्ता

नाश करके संसार में धर्म की स्थापना करना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है।

इस समय धर्म का नाश हो रहा है और अधर्म फैल रहा है। मुझे अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करना है। धर्म का कल्याण करना ही मेरा ध्येय है। क्या तुम लोग नहीं देखते कि संसार कैसा अधर्म छाया हुआ है? मनुष्य क्या करने के लिए और क्या कर रहे हैं?

मैं मनुष्यों
इसने

लेकिन आजकल घर की लकड़ी मिटाने के लिए बड़ा भारी खपता एक छोटे भारी को देता है ? फिर घर का पकते ही यह खप खाद मही रहती । खेत में खपने खादको बड़ा लाभदायक होता ही खपन का कारण है । जानी पुरान कहते हैं—'खेत से कोई बड़ा मही होता, बक-पन तो देने में ही है ।'

या निशा सर्वभूतानां तस्यां आपति भवसो ।

सम्भा आपति भूतानि, या निशा परमेशो मुनेः ॥

—गीता ।

अज्ञान पुरुष जिसे राग कहते हैं, जानी कबे दिन कहते हैं और जाना जिस दिन कहते हैं, उसे अज्ञानी राग कहते हैं । यह प्रथा सदा से जभी आती है । इसी के अनुसार अज्ञानी लोग अपने बन्ध को बड़ा समझते हैं और ज्ञानवान पुरुष देनेवाले को बड़ा कहते हैं ।

सर्वभूत खपन विषय से कहते हैं—'खपने के अनुसार राग कहें कहें का मिश्रण जवाहिर । यह छोटे बड़े को मही निशा का समझना । छोटे कहें का देना बड़ी मही बड़ाना है ! लेकिन मही समझ से यह खपन ही बड़ाना है ।'

हैं सर्वभूत का उक्त भाषण को बड़ी प्रकट कर रहा है, यह बड़ा कहना ही है । एक भाषण से ही है । इसी कारण ही यह बड़ा कहते हैं -

सर्वभूत का वह खपन ही है । यह बड़ा कहते हैं ।

सर्वभूत का वह खपन ही है । यह बड़ा कहते हैं ।

तुलसीदासजी की इन दो चौपाइयों की ही यह व्याख्या है ।

राम कहते हैं—'तुम लोग कहते हो, छोटे को राज्य देने का नियम नहीं है, इसलिए छोटे को राज्य देना अनुचित होगा; लेकिन मैं कहता हूँ—निर्मल सूर्यवरा में यही एक अनुचित प्रथा है कि छोटे भाइयों को छोड़कर बड़े को राज्य दिया जाय । मैं इस प्रथा का निन्दित सूर्यवरा का कलंक मानता हूँ ।'

गुलिरता में एक कहानी आई है । एक अमीर अपने चापे हाथ की छोटी अंगुली में अंगूठी पहने था । किसी गरीब ने उसके पास जाकर पूछा—'दाढ़िना हाथ पड़ा होता है या बाया ?' अमीर उत्तर दिया—'जो हाथ उठाता काम करता है, इस कारण बड़ी माना जाता है ।' तब गरीब ने कहा—'तो आपने अंगूठी बायें हाथ क्यों पहन रखी है ? दाढ़िने हाथ को क्यों नहीं पहनाई ?' अमीर बोला—'मैंने पहले ही कहा कि जो उठाता काम बदे, वही बड़ा । जो छोटे से काम कराता है, बह-बड़ा नहीं है । मैंने बायें हाथ अंगूठी पहन रखी है । इससे दाढ़िने हाथ का पहनपन आप प्रकट हो जाता है । छोटे को देना ही छोटा पहनपन है । पहनपन बड़ा है । मैंने दुनिया को दाढ़िने हाथ देने के लिए बायें हाथ अंगूठी पहनाई है । इससे यह जाहर हो जाता है कि छोटे को भी बड़ा दो, जिससे बड़े के बड़ापन की धरवा न लगे ।

गरीब ने कहा—'अमीर ने पूछा—'कहना' यह अंगूठी पहनी को न पहन कर मरस कहा' का' रमना' पहनाई है ?

अमीर ने कहा—'दाढ़िने हाथ उठाता काम बदे, वही बड़ा होता है ।

राज्य अनुचित है । यह अविश्वास का कारण है । सगे भाइयों ने यह भेदभाव क्यों ? क्या दाहिना हाथ अपना है और बायाँ हाथ पराया है ? जिसे इस बात पर विश्वास है कि देने से लक्ष्मी बढ़ती है, वह देना विचार कदापि नहीं करेगा । देना क्या है ?

स्वस्यातिसर्गो दानम् ।

किसी वस्तु पर अपनी सत्ता का उत्सर्ग कर देना ही दान है । दान से लक्ष्मी बढ़ती है, घटती नहीं है ।

राज्य प्राप्ति के अवसर पर राम का इस प्रकार पक्षताना भक्त के मन की कुटिलता हरने वाला है । राम ने पक्षता कर भक्त के मन की कुटिलता का हरण किया है । इस पक्षतावे में गीता की यह बात भी का जाती है—

अर्मातश्चमदग्निभस्महिमाशान्तिरार्जवम् ।

बुद्धि के राज्याने जैसा राज्याने वाला राज्य मिलने पर भी पक्षताना भक्तों के मन की कुटिलता हरने के लिए है । इससे उन्हें सश्रद्धा मिलने पर अभिमान न बाने की शिक्षा हो गई है ।

राम ने राज्य देने पर भी अभिमान नहीं दिया था, बरन् अपने मित्रों का अभिमान हरने के लिए ब्रह्मास्त्र दिया था, लेकिन राज्य होने का अवसर और बेहतर पेटिने । आपकी सेवा का परम में है । अभिमान नहीं करना । क्या हुआ, परम में त्रिकुण्डल है वरन् का वरन् जान बढ़ता है वरन् के भक्त हैं । राम के का राम वरन् का वरन् वरन् ।

रामचंद्र का आदरा सामने रखकर परमात्मा से प्रार्थना करो—“हे प्रभो ! मेरे मन की कुटिलता हरो । मेरे अंतःकरण में अभिमान का अंकुर न बने ।”

मनुष्य मात्र निरभिमान होकर नीचे गिरे हुए लोगों को ऊपर उठाने लगे और दूसरों के हित के लिए अपने स्वार्थ का बलिदान करना सीख लें तो घर-घर में राम-राज्य हो जाए ।

राज्य की तुल्य और वैभव की बोधा ने ही संसार को नरक बना छोड़ा है । जिस दिन सभी लोग न्याय-अन्याय को समझकर न्यायपथ का अवलंबन करेंगे, अन्याय से दूर रहेंगे और प्राणीमात्र को अपना वस्तु समझ कर उनके सुख में सुख और दुःख में दुःख अनुभव करने लगेंगे, तभी राम की इस पवित्र भूमि पर राम-राज्य की प्राप्ति होगी ।



है और अवज्ञा की रक्षा करने वालों का गला काट कर अवज्ञा की मगाने वाले में भी शक्ति अपेक्षित है। प्रत्येक अच्छे काम में अगर सामर्थ्य आवश्यक है तो युगे काम में भी शक्ति चाहिए ही। बिना शक्ति के कोई युग काम भी नहीं होता। इस प्रकार शक्ति अपने आप में कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है, अगर शक्ति की सार्वजनिक प्रयोग में है। अशक्ति की अपेक्षा शक्ति अच्छी चीज है, अगर शक्ति का सदुपयोग ही दितावद् है, इसमें सन्देह नहीं।

यदि शिक्षा मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने के लिए है तो उसे दोनों उत्तरदायित्व निभाने होंगे—दोनों दृष्ट शक्तियों का विकास भी करना होगा और उनके सदुपयोग की ओर भी मनुष्य को मुहाना होगा। आजकल बहुत से लोग पहली बात को तो स्वीकार करते हैं मगर दूसरी को नहीं। वह शक्ति विकास तो आवश्यक समझते हैं, मगर उसके उपयोग के विषय में कुछ बोलते हैं। इस कारण शिक्षा में जो लाभ होने चाहिए, वह नहीं हो रहे हैं और समाज में गरबद गरब रही है।

आजकल बहुत-सी पाठशालाएँ खुली हुई हैं और लोग अपनी पाठशालाओं में आने वाले को बढ़ाकर लारी बनाने की कोशिश करते हैं। मगर समझदारों को सदैव यह संशय रहता है कि वह कलकल मशहूर बनाने के बदले कहीं पठितपूर्ण को पैदा नहीं करती ?

बहुतेरे हिंस्र प्रचार होने चाहिए, आर्थ-शिक्षा का प्राथमिक स्तर से क्या स्तर तक को आस-पस-पस है, वह सच्चा विषय है। ऊर्ध्व में बड़ा समझ बना चाहिए कि शिक्षा नहीं होती चाहिए,

शिक्षण में पढ़ने वाले का बल्ल्याण हो। शिक्षा के विषय में अध्यापक और विद्यार्थी—दोनों बराबरी में हैं, किन्तु विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों पर अधिक उत्तरदायित्व है। जो लोग अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, उनको एक मात्र यही इच्छा होनी है कि बच्चा सुधार आए। इसी उद्देश्य से वे बच्चों को अध्यापक के सिपुदे करते हैं। ऐसी दशा में अध्यापकों को अपनी छात्र-गण्य में रहने वाले छात्रों के प्रति अपना बल्लेय समझना चाहिए। विद्यार्थी के भविष्य का बहुत बड़ा भाग अध्यापक पर ही है। वह चाहे तो विद्यार्थी को जीवन-साधन के लिए समर्थ और बना सकते हैं और यदि चाहे तो विद्या के मार्ग पर सुश्रुता को ऐसी शिक्षा दे सकते हैं, जो ऊँच भर निभले हो नही। इसीलिए कहा जाता है कि अध्यापकों के ऊपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है।

एक शिक्षक-विद्यालय का भी छात्रों के सुधार में बड़ा हाथ है, किन्तु छात्रों को भी अपेक्षा कम है। छात्र-विद्यालयों के शिक्षकों के बल्लेय भाग देना चाहने को शिक्षकों के मत है। एक शिक्षक बल्लेय देना चाहता है। बल्लेय शिक्षकों को है कि वह अपनी कोमल बल्लेय देना चाहते हैं। इसका कारण है कि वह अपने को बल्लेय समझते हैं। इस पर बहुत बड़ा शिक्षकों को कहते हैं। यह कहते हैं कि वह अपने बल्लेय को बल्लेय को देना चाहते हैं।

एक शिक्षक का बल्लेय है कि वह अपने बल्लेय को देना चाहते हैं। यह बल्लेय बल्लेय देना चाहते हैं कि वह अपने बल्लेय को देना चाहते हैं। यह बल्लेय बल्लेय देना चाहते हैं कि वह अपने बल्लेय को देना चाहते हैं।

उनका पात्रन योग्य करके अभ्यासकों को भोग देने हैं। यह करण मात्र तैयार करना बहलाया। अब जने पत्रों बनाने का ठगरागिब अभ्यासकों पर आता है। वे उसे एक आदर्श व्यक्ति बना सकते हैं, ताकि वह अच्छे कपड़े की तरह अपने देश और अपनी सभ्यता की रक्षा कर सकें। अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया वही इस संसार के लिए लाज्याशरण करने वाले वस्त्र की भाँति घुरा मिट्ट हो सकता है।

अगर दुःख के साथ यह देखा जाता है कि समाज में अभ्यास के सम्पूर्ण ठगरागिब के अनुसूच उनको प्रतिष्ठा नहीं दे। उसे हमारे लोग तत्काल पाने वाले अभ्यसकों के समान ही समझते हैं और भव्य अभ्यास में भी वही भावना या कर गत है कि हम बेचन देने वाले के मौका हैं! आज अचिर्काल विश्व जैसे जैसे अपने घटे हुए करने हैं। उन्हें अपने विचारों के द्वारा और विचार से कोई मतलब नहीं रहता। भूल की छुटी हुई और साथ ही अभ्यास न करने बलव्य से छुटी गई। ऐसा बेचने व्यवहार करने वाले अभ्यासक, सब विश्व नहीं बड़े हो सकते। कहना चाहिए कि हमारे यहाँ यहाँ का समझ नहीं समझ पाया है। वे लोग अभ्यासकों का व्यवसाय करके वेत पावना चाहते हैं मुद्रा के बदले में नहीं समझते। जब अभ्यासक यह नहीं सोचते कि इस व्यवसाय के बावजूद का जीवन हमारे विश्व में तो लक्ष्य है, अभ्यासक को लक्ष्य के साथ ही भुगतान हमारा जीवन बर्बाद करने है। अगर हमारा लक्ष्य ही है कि हमारे व्यवसाय का मुद्रा नहीं होगा तो इस व्यवसाय की समझ हमारे व्यवसाय के प्रति, यदि हमारे व्यवसाय के प्रति विश्व के प्रति विश्वसनीय हो जाते। हमारे व्यवसाय

को सुधारने के लिए उनमें योग्य संस्कार डालना उनके लिए अशक्य नहीं है। किन्तु अध्यापक स्वयं ही उस ओर ध्यान नहीं देते। अध्यापक अपने जीवन-निर्वाह के लिए बेतन होते हैं, यह कोई बुराई नहीं है और परिस्थिति देखते हुए आवश्यक भी है, किन्तु उनमें अपने आपको तया बेतन देने वाजों से उनके प्रति हीनता का—गुलामी का—जो भाव आगया है, यह एक बहुत बड़ी बुराई है।

प्राचीन-काल में आजकल की भांति क्रय-विक्रय नहीं होता था। गुरुजन अपने शिष्यों को सवारतापूर्वक विद्यादान देते थे और शिष्यगण भद्रापूर्वक उसे ग्रहण करते थे। प्राचीन-काल का इतिहास देखने पर विद्या के लेन-देन का क्रम और ही प्रकार का प्रतीत होता है।

भगवान् महावीर भी अध्यापक के पास विद्या पढ़ने भेजे गये थे। यद्यपि तीर्थङ्करों को जन्म से ही तीन ज्ञान होते हैं और वे गर्भावस्था से ही संसार को जानने देखने लगते हैं, माँ के पेट में ही सब विद्याएँ लेकर उत्पन्न होते हैं, फिर भी पिता ने अपना कर्तव्य समझ कर उन्हें परिदत्त के पास पढ़ने के लिए बिठलाया। पिता ने बड़ी धूमधाम के साथ उन्हें परिदत्त के यहाँ भेजा। भगवान् जन्म-जाल ज्ञानी थे, किन्तु उन्होंने पढ़ने जाने से इन्कार करके माता-पिता का अविनय नहीं किया। वे प्रसन्नतापूर्वक चले गये। पढ़ाई का यह कायदा है कि गुरु ऊँचा बैठता और शिष्य नीचे। भगवान् इन्द्र द्वारा पूजित थे, परन्तु अध्यापक के सम्मुख नीचे बैठने में उन्हें कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। अपने माना पिता को सन्तुष्ट करने के लिए वह सप्ताहापूर्वक अध्ययन करने लगे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि विनय करने में बढ़पन घटना नहीं है, बल्कि बढ़ता है।

थे, तथापि उन्होंने अपने गुरु का सम्मान किया। उन्होंने अपने अध्यापक से यह न कहा कि मैं तुमसे अधिक ज्ञानी हूँ। ऐसे विनीत विद्यार्थी और कर्तव्यनिष्ठ अध्यापक हों तो किस बात की कमी रह जाय ? आज की दशा तो यह है कि स्कूल या पाठशाला छोड़ने के बाद फिर कभी गुरु का समाचार पूछने की ही आवश्यकता नहीं मालूम होती ! ये मरें या जीयें, छात्रों को उनसे कोई मतलब नहीं। इस भावना के परिणाम-स्वरूप विद्यार्थियों की भी कुछ कम दुर्दशा नहीं है। पढ़कर निकलते हो उन्हें पेट भरने की और नौकरी पाने की चिन्ता घेर लेती है।

जो विद्या बेगार के रूप में पढ़ी और पढ़ाई जाती है, वह गुलामी नहीं तो क्या स्वाधीनता सिलसलायमी ?

शिक्षा के संबंध में प्राचीन काल का एक उदाहरण और लीजिए। श्रीकृष्णजी इतिहास में प्रसिद्ध महापुरुषों में से एक हैं। वे बहुत बड़े राजा के पुत्र थे। महापुरुष होने के कारण उनमें बहुत अधिक ममका थी। फिर भी माता-पिता का आग्रह मानकर वह सान्दीर्षान्त आश्रम में पाम पढ़ने गये। इन्हीं श्रम के पास सुदामा नामक एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी भी पढ़ता था। कृष्णजी का उमर प्रेम हागया। दोनों गाढ़े मित्र बनकर रहने लगे।

सयोगवश एक दिन गुरु वही चले गये और घर में जलाने की लकड़ी नहीं थी। लकड़ी के अभाव में गुरुजीने कोहन नहीं बना सकता थी। यह देखकर कृष्णजी अपने मित्र सुदामा को साथ लेकर लकड़ी लाने के उद्देश्य से जंगल का ओर चला दिये। दोनों

‘उन्हें देखकर आचार्य ने कहा—‘वन्स ! मैं तुम लोगों को क्या पढ़ाऊँ ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिये, वह तो तुम लोगों में मौजूद ही है । देखो न, बेचारा सुदामा इस विपत्ति से कितना घबरा गया है । तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण घबराये नहीं और सरा की भौंति प्रसन्न दीप्त पड़ते हो ।’ इतना कह कर आचार्य उन्हें घर ले गये ।

विद्यार्थी की अपने गुरु के प्रति कैसी भ्रद्धा-भक्ति होनी चाहिये, उसका आदर्श हम कथा में बतलाया गया है । साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अध्यापकों में और विद्यार्थियों में यह बात कर्शो !

पूर्व काल में शिक्षा की क्या दशा थी, यह देखने के लिए राज्ञों की ओर ध्यान दीजिए । ठाणोंगत्र (३ रे ठाणे) में भगवान् महावीर कहते हैं:—

सउ दुपपट्टियारा पन्नत्ता, समणाऊल्लो संजडा-अम्मा पि वणो ।

भगवान् ने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यों ! तीन के श्रृणु से मनुष्य समझता पूर्णक उश्रण नहीं हो सकता ।

शिष्यों ने कहा—भगवान् ! अनुमद कसके बतलाइए—वह तीन कौन कौन हैं ?

भगवान् बोले—माता पिता, जिसकी महायत्ना से बढ़े बढ़े स्वामी और धर्माचार्य । इन तीन के श्रृणु से मुक्त होना असम्भव कठिन है ।

उन्हें देखकर आचार्य ने कहा—'बन्स ! मैं तुम लोगों को क्या पदार्थ ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिए, वह तो तुम लोगों में मौजूद ही हैं। देखो न, बेचारा सुदामा इस विपत्ति से कितना घबरा गया है। तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण पचराये नहीं और मरा की भाँति प्रसन्न दीख पड़ते हो।' इतना कह कर आचार्य उन्हें घर ले गये।

विद्यार्थी की अपने गुरु के प्रति कैसी भट्ठा-भक्ति होनी चाहिए, उसका आदर्श इस कथा में बतलाया गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अध्यापकों में और विद्यार्थियों में यह बात कहीं !

पूर्व काल में शिक्षा की क्या दशा थी, यह देखने के लिए शास्त्रों की ओर ध्यान दीजिए। ठाण्णंगिर (३ रे ठाण्ण) में भगवान् महावीर कहते हैं:—

सउ दुपपठियारा पन्नता, समणाऊल्लो तंजहा-अम्मा पि उणो ।

भगवान् ने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यो ! तीन के श्रम से मनुष्य सरलता पूर्वक उच्चाण नहीं हो सकता ।

शिष्यों ने कहा—भगवान् ! अनुमद करके बतलाइए—वह तीन कौन कौन हैं ?

भगवान् बोले—माता पिता, जिसकी सहायता से बड़े बड़े स्वामी और उर्माचार्य। इन तीन के श्रम से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है।

आसन पर न बैठे । जो बख्ख उन्हें बुरा मालूम हो, वह न पहने और न उनकी इच्छा के विरुद्ध भोजन करे । इस प्रकार सग तरह की सेवायें करता हुआ पुत्र अपने को धन्य माने ।

गौतम स्वामी भगवान् से पूछते हैं—प्रभो ! क्या इतनी सेवा करने से पुत्र, माता पिता के श्रेण से छुटकारा पा जायगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—नहीं, गौतम ! ऐसा नहीं हो सकता । इतना करके भी माता-पिता के श्रेण से मुक्ति नहीं मिल सकती ।

इस जगह आज्ञाकल एक नया तर्क उठाया जाता है । कुछ लोग कहते हैं—जब इतनी सेवा करने पर भी माता-पिता का श्रेण नहीं चुक सकता, तो स्पष्ट है कि उनकी सेवा करना पाप है ।

जिस शास्त्र से इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, उसे लोग शास्त्र नहीं रहने देते, बल्कि उसे शास्त्र बना डालते हैं । धर्म के पवित्र नाम पर इस प्रकार अधर्म मिलाने वाले संसार का क्या कहयाण कर सकते हैं ? ऐसा कहने वाले लोग संसार को भुतावे में डालते हैं, लोगों को कर्त्तव्यभ्रष्ट बनाते हैं और संसार की घोर हानि करते हैं ।

आज्ञाकल कितने शिक्षक मिलेंगे जो अपने विद्यार्थियों से पूछते हों कि—तुम क्या खाते हो ? क्या पीते हो ? माता-पिता के प्रति विनयपूर्ण व्यवहार करने हो या नहीं ? उनकी सेवा करते हो या नहीं ? कठिनाई तो यह है कि आधुनिक शिक्षा में मद्राचार को जैसे कोई स्थान ही नहीं दिया जाता । समय पर अरुवापक और विशाधी आये । किनायें पड़ी-पड़ाई और समय पूरा होने पर अपने-अपने

समय बालक का पात्रण-व्योषण करने हैं। वेमे निर्धार्य-भाष से उपकार करने वाले उपकारियों का उपकार स्मरण करने के लिये उमे मुझने वाली शिक्षा, शिक्षा है या अशिक्षा ? 'अशिक्षा' !

माता-पिता के अनिश्चित दूसरा उपकारी बह है जो गरीबी के समय सहायता करे ।

तीसरे उपकारी बह गुरु हैं, जिन्होंने धर्म की मनुष्य शिक्षा दी है। आत्मा को काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य आदि विकारों से रहित निर्दोष और निर्बिचार बनाने का उपदेश दिया है। जिन्होंने आत्मा-अनात्मा का विवेक भिष्यताया है और लोक पर-लोक आदि का ज्ञान कराया है।

इन तीन प्रकार के उपकार-कर्त्ताओं में मनुष्य सहायता के उद्योग नहीं हो सकता। इनका उपकार सदाय है।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि जब इन उपकारियों की बर्ती में बड़ी सेवा करके भी हम सदाय उद्योग नहीं हो सकते और उद्योग होना शक्य है, तो आश्विर क्या करना चाहिए ? इस कष्टमय में, कीन्हीं विधि से हम उद्योग हो सकते हैं ?

हम प्रश्न का जवाब देने में पहले कुछ सावधान बनने पर प्रकाश होना उचित है। कुछ लोग वहाँ उद्योग का भाव करने ही को-बुद्धि मन्दते मानते हैं। वह जग आने पर वह क समर्थन में बह पड़ते हैं कि वह वह गा है वह वह मान्य है। ऐसे ही वहाँ उद्योग मान्यता को उठ और करना है। अन्तर्गत मान्यता की वहाँ क 'अव' मान्यता के विरुद्ध ही वह वह रहता है-वहाँ

अनुभव करने लगेंगी। वृत्त समय आपको सत्ता वन पर नहीं चलेगी। ऐसा होने में जो खतरा है, उसे आप लोग पहले ही अनुभव कर सकें तो अच्छा ही है।

जो लोग यह कहते हैं कि पर्दा प्राचीन काल से—बड़े-बूढ़ों के जमाने से चला आया है, उन्हें सोचना चाहिए कि लोग अगर बड़े-बूढ़ों के बनाये हुए कायदे से ही चलते तो आज इतना करने की आवश्यकता न पड़ती। बड़े-बूढ़ों ने जिस विचारशीलता से पर्दा प्रथा चलाई थी, वह विचारशीलता आज होती तो पर्दा उठाने तक भी सत्य की देरी न लगती।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि पर्दा उठाने का अर्थ सत्ता उठाकर एक प्रकार की निर्लज्जा उत्पत्ति कर देना नहीं है, पर्दा उठाने पर स्त्रियों को वर्तमान उपयोग में आने वाले निर्लज्ज व पूर्ण बारीक वस्त्रों का, जिनमें आज उनके सिर का एक-एक बाल दिखाई पड़ता है, त्याग करना पड़ेगा। पर्दा उठाने से पर्दे की बहुत-सी पोले अपने आप समाप्त हो जाएंगी। क्या इतने बारीक वस्त्र प्राचीन काल की बहिनें पहनती थीं ?

अगर पर्दा एक दम बिलकुल नहीं छूट सकता तो कम से कम उसका रूपान्तर तो अवश्य ही करने योग्य है। दिल्ली तथा कुछ प्रांत में भी पर्दा है, मगर मारवाड़ जैसा पर्दा नहीं है। स्त्रियों को बन्ध कर रखने से ही लज्जा की रक्षा नहीं हो सकती, यह बात आपको भली भाँति समझ लेनी चाहिए।

मैं किसी पर सख्त नहीं करता। मेरा कर्तव्य आपके कल्याण

यह मकान तुम्हारा है। तुम हमने किसी को आने दो या न आने दो। मैं इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अगर मुझे मना कर दो तो मैं भी अभी बाहर निकलने के लिए बाध्य हूँ। ऐसे दरवा में मैं तुम्हारे बुलाने, बिठाने या न बुलाने के कार्य में क्या दखल दे सकता हूँ ? यह मेरा घर नहीं है कि लोगों को बुला-बुलाकर बिठलाऊँ रही उपदेश देने की बात, सो भंगी आएगा तो उसे और बाधण आएगा तो उसे समान रूप से मैं उपदेश दूँगा। अगर मैं उपदेश न सुनाऊँ तो फिर साधु ही कैसा !

लोग कहते होंगे - जब भगियों को उपदेश सुनाते हो तो उनके गोचरी करने (आहार लेने) क्यों नहीं जाते ? मैं कहता हूँ-अगर तुम लोगों का उन के साथ ऐसा व्यवहार हो जाय-आपस में मोड़न-व्यवहार आरम्भ हो जाय, तो मुझे कुछ भी आपत्ति न होगी। उस समय मैं भी भगियों के घर से गोचरी जाने लगूँगा।

मित्र ! साधु लोग भगियों से परदेष्टा करें या न करें, अगर सचार्थ यह है कि तुम्हीं लोग उनसे परदेष्टा नहीं करते। अस्पतालों में भंगी कार्य करते हैं और तुम पक्षी की दवा पीने हो। ऐसा कौन है जिसने आपत्ताज की दवा का भक्षण न किया हो ? रेल में भंगी सफर करता है और उभी में तुम बैठने हो। क्या भंगी को परदेष्टा करना कहते हैं ? साधु तो इन दोनों चीजों को काम में नहीं लेते। अब यदाभी भंगी से तुम व्याप्त परदेष्टा करने हो या हम ? हम लोग साधुवन के धाम में बन्दे होने के कारण गरव समझे जाते हैं इस कारण तुम चलो मो करो, किन्तु मुझ भंगी से परदेष्टा न करना और हमारे उपदेश दे देने मात्र में धर्म पर मरुट भाषा समझना सरासर अभ्यास है।

आड़े समय पर कामे नदी जाती, तो कब काम आवेगी ?

माता-पिता के साथ आचार्य की भी देव मानने की शिक्षा की जाती थी । कहा भी है:—

गुरु गोविंद दोनों सदे, किमके लागूं पाय ।

बलिहारो गुरु देव की, गोविंद दिया बनाय ।।

अगर धर्म और नीति का उपदेश देने वाले न हों तो मानव-समाज की कैसी दुर्दशा हो ? मानव-जीवन कितना भयङ्कर बन जाय ?

अगर उपनिषद् का जो उल्लेख किया है, उसमें आचार्य ने शिष्य को उपदेश देते हुए, यह भी बतलाया है कि हमने जिन कार्यों का आचरण किया है, वही कार्य तुम भी करना, उससे विरुद्ध मत करना । यह कथन स्पष्ट प्रकट करता है कि उस समय के आचार्य (अध्यापक) छात्रों के समक्ष कितना संयममय व्यवहार करते होंगे ! उनका जीवन कैसा नीतिमय होगा ? सभी तो यह स्पष्ट शब्दों में शिष्य को अपना अनुकरण करने का आदेश देते हैं ? क्या आधुनिक शिक्षक भी प्रामाणिकता के साथ ऐसा आदेश दे सकते हैं । उन्हें अपने ऊपर ऐसा सुट्टा विश्वास है ? आधुनिक अध्यापक कहता है:—

Do as I say, dont do as I do.

अर्थात्—मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करो । मैं जैसा करता हूँ वैसा मत करो ।

दोनों में कितना अन्तर है एक सबल हृदय की भाषा है, दूसरी निर्बल हृदय की । एक में उच्च धार्मिकता की दृढ़ता स्पष्ट रहा है, दूसरे में आनगुण दागता प्रकट हो रही है । मानो सराधार कहने के लिए



